(२४) और (तुम्हारे लिए) विवाहित नारियाँ (निषेध की गई हैं) परन्तु जो (दासी) तुम्हारे स्वामित्व में हों,[1] यह आदेश तुम पर अल्लाह ने अनिवार्य कर दिये हैं तथा इनके सिवाय अन्य स्त्रियाँ तुम्हारे लिए उचित की गईं कि अपने धन (महर) से उन से विवाह करो,

وَّالْمُحْصَنٰتُ مِنَ النِّسَآءِ اِلَّا مَا مَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ ۚ كِتٰبَ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ ۚ وَاُحِلَّ لَكُمْ مَّا وَرَآءَ ذٰلِكُمْ اَنْ تَبْتَغُوْا بِاَمْوَالِكُمْ مُّحْصِنِيْنَ غَيْرَ مُسٰفِحِيْنَ ط

---

[1]क़ुरआन करीम में إحصان चार अर्थों में प्रयोग हुआ है (१) विवाह (२) स्वतंत्रता (३) पवित्रता (४) तथा इस्लाम, इस आधार पर محصنات के चार अर्थ हैं (१) विवाहित स्त्रियाँ (२) स्वतंत्र स्त्रियाँ (३) चरित्रवान स्त्रियाँ (४) तथा मुसलमान स्त्रियाँ। यहाँ पहला अर्थ तात्पर्य है। इसके उतरने की विशेषता यह है कि जब कुछ युद्धों में काफ़िरों की स्त्रियाँ भी मुसलमानों की बंदी हुईं तो मुसलमान उनसे सहवास करने में अच्छा नहीं आभास कर रहे थे, क्योंकि वह विवाहित थीं। सहाबा ने नबी सल्लल्लाह अलैहि वसल्लम से पूछा, जिस पर यह आयत उतरी। (इब्ने कसीर) जिससे यह ज्ञात हुआ कि युद्ध में प्राप्त होने वाली काफ़िर स्त्रियाँ जब मुसलमानों की दासियाँ वन जायें, तो विवाहित होने के उपरान्त भी उनसे सहवास करना उचित है। परन्तु गर्भाशय की स्वच्छता आवश्यक है अर्थात एक मासिक धर्म के पश्चात अथवा यदि गर्भवती है तो प्रसव के पश्चात सम्भोग करें।

<u>दासता की समस्या</u> : क़ुरआन के उतरने के समय दास-दासी का प्रचलन सामान्य था जिसे क़ुरआन ने बंद नहीं किया, परन्तु उनके लिए वह कार्य प्रणाली निर्धारित की जिससे दास तथा दासियों को अधिक से अधिक सुविधा प्राप्त हो सके ताकि दासता की अवहेलना हो। इसके दो माध्यम थे। एक तो कुछ परिवार के पुरुष-स्त्री सदियों से बेच दिये जाते थे, यही खरीदे हुए पुरुष-स्त्री दास तथा दासियाँ कहलाते थे। मालिक को उनसे हर प्रकार का लाभ उठाने का अधिकार था। दूसरा माध्यम युद्ध में बन्दियों वाला था। काफ़िरों की बंदी स्त्रियों को मुसलमानों में बाँट दिया जाता था, वह उनकी दासी वन कर उनके पाँस रहती थीं। उस काल में बंदियों के लिए कोई अन्तर्राष्ट्रीय नियम नहीं था, इसलिए यह उस समय का श्रेष्ठ हल था। क्योंकि यदि उन्हें समाज में यूँ ही स्वतंत्र छोड़ दिया जाता, तो समाज में उनके द्वारा कई बुराईयाँ उत्पन्न होतीं (विस्तार के लिए देखें किताबुल रिक्क फ़िल इस्लाम "इस्लाम में दासता की वास्तविकता" लेखक मौलाना सईद अकबराबादी) वस्तुत: मुसलमान विवाहित स्त्रियाँ तो वैसे ही अवैध हैं, फिर भी काफ़िर स्त्रियाँ भी निषेध हैं जब तक कि उनके स्वामित्व में न आयें। इस स्थिति में गर्भाशय स्वच्छता के उपरान्त ही वह उनके लिए वैध हैं।

فَمَا اسْتَمْتَعْتُمْ بِهٖ مِنْهُنَّ فَاٰتُوْهُنَّ اُجُوْرَهُنَّ فَرِيْضَةً ۭ وَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ فِيْمَا تَرٰضَيْتُمْ بِهٖ مِنْۢ بَعْدِ الْفَرِيْضَةِ ۭ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلِيْمًا حَكِيْمًا ﴿٢٤﴾

व्यभिचार के लिए नहीं, पवित्रा के लिए[1] अत: जिन से तुम लाभ उठाओ उन्हें उनका महर दो,[2] तथा तुम निर्धारित महर के बाद परस्पर सहमती से जो चाहो तय कर लो तुम पर कोई दोष नहीं,[3] वस्तुत: अल्लाह ज्ञाता बुद्धिमान है।

وَمَنْ لَّمْ يَسْتَطِعْ مِنْكُمْ طَوْلًا اَنْ يَّنْكِحَ الْمُحْصَنٰتِ الْمُؤْمِنٰتِ فَمِنْ مَّا مَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ مِّنْ فَتَيٰتِكُمُ

(२५) तथा तुम में से जो स्वतंत्र मुसलमान नारी से विवाह की योग्यता न रखता हो वह उस मुसलमान दासी से (विवाह करे) जो तुम्हारे स्वामित्व में हो। अल्लाह तुम्हारे कर्मों

---

[1]अर्थात वर्णित क़ुरआन और हदीस के द्वारा वर्जित स्त्रियों के अतिरिक्त शेष सभी से विवाह करना उचित है। परन्तु उसमें चार विशेषतायें हों। प्रथम यह कि मंगनी करो أَنْ تَبْتَغُوا अर्थात दोंनो पक्षों द्वारा ग्रहण तथा स्वीकार हो। द्वितीय यह कि माल अथात महर अदा करना स्वीकार हो, तृतीय यह कि उन को विवाह बंधन (स्थाई अधिपत्य) में बांधना उद्देश्य हो, केवल सम्भोग का विचार न हो (जैसे व्यभिचार अथवा उस मुतआ में होता है, जो शियों में प्रचलित है अर्थात लिंगीय इच्छाओं की सन्तुष्टि के लिए कुछ दिन अथवा कुछ घंटे के लिए विवाह) तथा चतुर्थ यह कि गुप्त प्रेम न हो बल्कि साक्षियों की उपस्थिति में विवाह हो। यह चार शर्तें इस आयत से उपलब्ध होती हैं। इससे जहाँ मुतआ का खण्डन होता है, वहीं प्रचलित हलाला का प्रचलन भी अनुचित सिद्ध होता है क्योंकि इसका उद्देश्य भी स्त्री को स्थाई विवाह के बंधन में बांधना नहीं होता है यह केवल एक रात के लिए निर्धारित तथा प्रचलित है।

[2]यह इस बात पर बल है कि जिन स्त्रियों से तुम विवाह धार्मिक रूप से करके लाभान्वित तथा सुख प्राप्त करो, उन्हें उनका निर्धारित महर अवश्य अदा कर दो।

[3]इसमें आपस की सहमती से महर में कमी-बेशी का अधिकार दिया गया है।

नोट: استمتاع के शब्द से शिया लोग "मुतआविवाह" का भाव लेते हैं, जबकि इसका तात्पर्य विवाह के पश्चात सहवास तथा सम्भोग का लाभ है, जैसाकि हमने लिखा है। अवश्य मुतआ इस्लाम के आरम्भिक काल में प्रचलित रहा है और उसका औचित्य इस आयत के आधार पर नहीं था, बल्कि इस्लाम के पहले से चला आ रहा था, फिर नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में इसको क़ियामत तक के लिए अवैध कर दिया। जैसा कि सहीह हदीस में इसका विस्तृत विवरण विद्यमान है।

से पूर्णत: अवगत है, तुम परस्पर एक ही हो, अत: तुम उनके संरक्षकों की अनुमती से उन से विवाह करो[1] तथा रीति अनुसार उनका महर दे दो, वह पवित्र हों व्यभिचारिणी न हों, न गुप्त प्रेमी रखने वालियाँ, तो जब यह विवाह में हो जायें फिर कुकर्म करें तो उन पर स्वतंत्र नारियों के आधा दण्ड है[2] यह विवाह का आदेश उसके लिये है जिसे व्यभिचार का भय हो तथा सहन करना तुम्हारे लिये उत्तम है और अल्लाह क्षमाशील कृपानिधि है ।[3]

الْمُؤْمِنٰتِ ۗ وَاللّٰهُ اَعْلَمُ بِاِيْمَانِكُمْ ۗ بَعْضُكُمْ مِّنْ بَعْضٍ ۚ فَانْكِحُوْهُنَّ بِاِذْنِ اَهْلِهِنَّ وَ اٰتُوْهُنَّ اُجُوْرَهُنَّ بِالْمَعْرُوْفِ مُحْصَنٰتٍ غَيْرَ مُسٰفِحٰتٍ وَّلَا مُتَّخِذٰتِ اَخْدَانٍ ۚ فَاِذَآ اُحْصِنَّ فَاِنْ اَتَيْنَ بِفَاحِشَةٍ فَعَلَيْهِنَّ نِصْفُ مَا عَلَى الْمُحْصَنٰتِ مِنَ الْعَذَابِ ۗ ذٰلِكَ لِمَنْ خَشِيَ الْعَنَتَ مِنْكُمْ ۗ وَاَنْ تَصْبِرُوْا خَيْرٌ لَّكُمْ ۗ وَاللّٰهُ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿٢٥﴾

(२६) अल्लाह (तआला) तुम्हारे लिये स्पष्ट करना एवं तुम्हें तुम से पूर्व के (सदाचारियों का) मार्ग दर्शाना तथा तुम्हारी क्षमा-याचना स्वीकार करना चहता है और अल्लाह ज्ञाता बुद्धिमान है ।

يُرِيْدُ اللّٰهُ لِيُبَيِّنَ لَكُمْ وَيَهْدِيَكُمْ سُنَنَ الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِكُمْ وَيَتُوْبَ عَلَيْكُمْ ۗ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌ حَكِيْمٌ ﴿٢٦﴾

(२७) और अल्लाह तआला चाहता है कि तुम्हारी क्षमा स्वीकार करे और जो लोग

وَاللّٰهُ يُرِيْدُ اَنْ يَّتُوْبَ عَلَيْكُمْ ۟ وَيُرِيْدُ الَّذِيْنَ يَتَّبِعُوْنَ الشَّهَوٰتِ

---

[1]इससे ज्ञात हुआ कि दासी का मालिक ही दासी का संरक्षक है, दासी का विवाह किसी से उसकी आज्ञा के बिना नहीं किया जा सकता । इसी प्रकार दास भी मालिक की आज्ञा के बिना किसी से विवाह नहीं कर सकता ।

[2]अर्थात दासियों को सौ के बजाय (आधे अर्थात) पचास कोड़े का दंड दिया जायेगा । अर्थात उनके लिए पत्थर मारकर मार ड़ालने का दंड नहीं हो सकता, क्योंकि वह आधा नहीं होसकता, तथा अविवाहित दासी को निन्दनीय दंड होगा । (विस्तृत जानकारी के लिए तफ़सीर इब्ने कसीर देखें)

[3]अर्थात दासी के साथ विवाह वही लोग कर सकते हैं, जो अपनी जवानी के आवेग पर नियंत्रण रखने की शक्ति न रखते हों, और कुकर्म में पड़ने का भय हो, यदि ऐसा भय न हो तो उस समय तक धैर्य रखना श्रेष्ठ है जब तक किसी स्वतन्त्र पारिवारिक स्त्री से विवाह करने योग्य न हों ।

اَنْ تَمِيْلُوْا مَيْلًا عَظِيْمًا ۝٢٧

कामवासना के अधीन हैं वह चाहते हैं कि तुम उस से बहुत दूर हट जाओ ।[1]

يُرِيْدُ اللّٰهُ اَنْ يُّخَفِّفَ عَنْكُمْ ۚ وَخُلِقَ الْاِنْسَانُ ضَعِيْفًا ۝٢٨

(२८) अल्लाह तुम्हारा बोझ हलका करना चाहता है तथा मनुष्य निर्बल पैदा किया गया है ।[2]

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَاْكُلُوْۤا اَمْوَالَكُمْ بَيْنَكُمْ بِالْبَاطِلِ اِلَّاۤ اَنْ تَكُوْنَ تِجَارَةً عَنْ تَرَاضٍ مِّنْكُمْ ۟

(२९) हे मुसलमानो, अपना माल परस्पर अनीति से न खाओ,[3] परन्तु यह कि तुम्हारी आपस की सहमती से व्यापार हो ।[4] और अपने

---

[1] أن تميلوا अर्थात सत्य से असत्य की ओर झुक जाना ।

[2] इस क्षीणता के कारण उसके पाप में पड़ने की अधिक सम्भावना है । इसलिए अल्लाह तआला ने उसे यथा-संभव सुविधा प्रदान की है । उन्हीं में से दासी से विवाह करने की आज्ञा भी है । कुछ ने इस क्षीणता का सम्बन्ध स्त्रियों से बताया है अर्थात स्त्री के विषय में क्षीण है, इसी कारण स्त्री भी अपनी मन्द बुद्धि के उपरान्त भी पुरुषों को अपने जाल में फंसा लेती है ।

[3] بالباطل में धोखा छल-कपट तथा मिलावट के अतिरिक्त वह सभी व्यापार भी सम्मिलित हैं, जिनको करने से धार्मिक नियमों ने निषेध किया है जैसे जुआ, ब्याज आदि । इसी प्रकार निषेध तथा हराम चीजों का व्यापार करना भी सम्मिलित है । जैसे- फ़ोटोग्राफी, रेडियो, टी० वी०, वी० सी० आर०, विडिओ तथा असभ्य कैसेट आदि । इनका बनाना, मरम्मत करना तथा बेचना सब अनुचित है ।

[4] इसके लिए यह शर्त है कि लेन-देन वैध पदार्थों का हो । निषेध का व्यापार परस्पर सहमति से भी अनुचित ही रहेगा । इसके अतिरिक्त सहमती में खियार-ए-मजलिस की भी समस्या आती है अर्थात जब तक एक-दूसरे से विदा न हो, सौदा निरस्त करने का अधिकार रहेगा । जैसा कि हदीस में है :

«الْبَيِّعَانِ بِالْخِيَارِ مَا لَمْ يَتَفَرَّقَا».

"दोनों आपस में सौदा करने वाले को, जब तक जुदा न हों अधिकार है ।" (सहीह बुखारी व मुस्लिम किताबुल बोयुअ)

وَلَا تَقْتُلُوْٓا اَنْفُسَكُمْ ۭ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِكُمْ رَحِيْمًا ۝٢٩

आप की हत्या न करो,।[1] अवश्य अल्लाह तआला तुम पर कृपालु है।

وَمَنْ يَّفْعَلْ ذٰلِكَ عُدْوَانًا وَّظُلْمًا فَسَوْفَ نُصْلِيْهِ نَارًا ۭ وَكَانَ ذٰلِكَ عَلَي اللّٰهِ يَسِيْرًا ۝٣٠

(३०) और जो व्यक्ति यह (अवज्ञा) सीमा लांघ कर तथा अत्याचार से करेगा[2] तो निकट भविष्य में हम उसे अग्नि में डालेगें, और यह अल्लाह के लिए सरलतम है।

اِنْ تَجْتَنِبُوْا كَبَاۗىِٕرَ مَا تُنْهَوْنَ عَنْهُ نُكَفِّرْ عَنْكُمْ سَيِّاٰتِكُمْ وَنُدْخِلْكُمْ

(३१) यदि तुम इन महापापों से बचते रहोगे जिनसे तुम को मना किया जाता है[3] तो हम

---

[1]इसका तात्पर्य आत्महत्या भी हो सकता है जो महापाप है और पाप करना भी जो विनाश का कारण है, और किसी मुसलमान की हत्या करना भी, क्योंकि सभी मुसलमान एक शरीर की भाँति हैं, इसलिए उसकी हत्या करना भी ऐसा ही है जैसे अपने आपकी स्वयं हत्या कर ली हो।

[2]अर्थात निषेधाज्ञा का उल्लंघन जान-बूझकर, अत्याचार और अवज्ञाकारिता से ही करेगा।

[3]महापाप की परिभाषा में मतभेद है, कुछ के निकट वह पाप है, जिन पर दंड निर्धारित है, कुछ के निकट वह पाप जिन पर क़ुरआन और हदीस में तीव्र चेतावनी अथवा शाप दिया गया हो, कुछ के निकट प्रत्येक वह कार्य जिससे अल्लाह ने अथवा उसके रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने निषेध (हराम) होने के कारण रोका है और वास्तविकता यह है कि इनमें से कोई एक बात भी किसी पाप में पायी जाये तो वह महापाप है। हदीसों में विभिन्न महापापों का वर्णन है, जिन्हें कुछ आलिमों ने एक किताब में संकलित किया है। जैसे अल-कबाएर लिज़्हबी, अल-ज़वाजिर अन इक़तिराफ़ अल कबाएर लिल हैत्मी आदि। यहाँ इस नियम का वर्णन है कि जो मुसलमान महापाप (शिर्क़, माता-पिता के अधिकार की अवहेलना, झूठ आदि) से रूका रहेगा, तो हम उस के तुच्छ पाप क्षमा कर देंगे। सूर: नज्म में इस विषय का वर्णन है, परन्तु वहाँ महापाप के साथ असभ्य (अनैतिक कार्य) से रुकने को भी तुच्छ पापों की क्षमा के लिए आवश्यक कहा गया है। परन्तु इसके अतिरिक्त तुच्छ पापों की पुनरावृति उनको महापाप बना देती है। इसी प्रकार महापाप से रुकने के साथ-साथ इस्लाम धर्म के नियम तथा अनिवार्य कार्यों को निश्चित रूप से करना और सत्कर्म करना भी अति आवश्यक है। सहाबा कराम (رضي الله عنهم) ने इस्लाम धर्म के इस रूप को समझ लिया था, इसलिए उन्होंने केवल क्षमा के वचन पर ही भरोसा नही किया, बल्कि अल्लाह तआला की कृपा प्राप्ति के लिए वर्णित सभी बातों का प्रयोजन किया। जबकि हमारा

اَنْ تَمِيْلُوْا مَيْلًا عَظِيْمًا ﴿٢٧﴾

कामवासना के अधीन हैं वह चाहते हैं कि तुम उस से बहुत दूर हट जाओ ।[1]

يُرِيْدُ اللّٰهُ اَنْ يُّخَفِّفَ عَنْكُمْ ۚ وَخُلِقَ الْاِنْسَانُ ضَعِيْفًا ﴿٢٨﴾

(२८) अल्लाह तुम्हारा बोझ हलका करना चाहता है तथा मनुष्य निर्बल पैदा किया गया है ।[2]

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَاْكُلُوْٓا اَمْوَالَكُمْ بَيْنَكُمْ بِالْبَاطِلِ اِلَّآ اَنْ تَكُوْنَ تِجَارَةً عَنْ تَرَاضٍ مِّنْكُمْ ۟

(२९) हे मुसलमानो, अपना माल परस्पर अनीति से न खाओ,[3] परन्तु यह कि तुम्हारी आपस की सहमती से व्यापार हो ।[4] और अपने

---

[1] أن تميلوا अर्थात सत्य से असत्य की ओर झुक जाना ।

[2] इस क्षीणता के कारण उसके पाप में पड़ने की अधिक सम्भावना है । इसलिए अल्लाह तआला ने उसे यथा-संभव सुविधा प्रदान की है । उन्हीं में से दासी से विवाह करने की आज्ञा भी है । कुछ ने इस क्षीणता का सम्बन्ध स्त्रियों से बताया है अर्थात स्त्री के विषय में क्षीण है, इसी कारण स्त्री भी अपनी मन्द बुद्धि के उपरान्त भी पुरुषों को अपने जाल में फंसा लेती है ।

[3] بالباطل में धोखा छल-कपट तथा मिलावट के अतिरिक्त वह सभी व्यापार भी सम्मिलित हैं, जिनको करने से धार्मिक नियमों ने निषेध किया है जैसे जुआ, ब्याज आदि । इसी प्रकार निषेध तथा हराम चीजों का व्यापार करना भी सम्मिलित है । जैसे- फ़ोटोग्राफी, रेडियो, टी० वी०, वी० सी० आर०, विडिओ तथा असभ्य कैसेट आदि । इनका बनाना, मरम्मत करना तथा बेचना सब अनुचित है ।

[4] इसके लिए यह शर्त है कि लेन-देन वैध पदार्थों का हो । निषेध का व्यापार परस्पर सहमति से भी अनुचित ही रहेगा । इसके अतिरिक्त सहमती में खियार-ए-मजलिस की भी समस्या आती है अर्थात जब तक एक-दूसरे से विदा न हो, सौदा निरस्त करने का अधिकार रहेगा । जैसा कि हदीस में है :

«الْبَيِّعَانِ بِالْخِيَارِ مَا لَمْ يَتَفَرَّقَا».

"दोनों आपस में सौदा करने वाले को, जब तक जुदा न हों अधिकार है ।" (सहीह बुख़ारी व मुस्लिम किताबुल बोयुअ)

प्रत्येक व्यक्ति के निर्धारित कर रखे हैं।[1] और जिनसे तुम ने अपने हाथों सन्धि की है उन्हें उनका भाग दो,[2] वास्तव में अल्लाह तआला प्रत्येक चीज़ को देख रहा है।

وَالْأَقْرَبُونَ ۚ وَالَّذِينَ عَقَدَتْ أَيْمَانُكُمْ فَآتُوهُمْ نَصِيبَهُمْ ۚ إِنَّ اللَّهَ كَانَ عَلَىٰ كُلِّ شَيْءٍ شَهِيدًا ﴿٣٣﴾

---

[1] موالی बहुवचन है مولى का। और مولى के कई अर्थ हैं मित्र, मुक्त किया गया दास, चचेरा भाई, पड़ोसी। परन्तु यहां पर इससे तात्पर्य उत्तराधिकारी हैं। अर्थ यह है कि प्रत्येक पुरुष-स्त्री जो कुछ छोड़ कर मर जायेंगे उसके उत्तराधिकारी माता-पिता तथा अन्य निकटवर्ती सम्बन्धी होंगे।

[2] इस आयत के प्रचलित अथवा निरस्त होने में व्याख्याकारों का मत भेद है। इब्ने जरीर तबरी आदि इसे निरस्त नहीं (आदेशित) मानते हैं तथा أيمانكم (सन्धि) से तात्पर्य वह प्रतिज्ञा तथा सन्धि मानते हैं जो एक-दूसरे की सहायता के लिए इस्लाम से पूर्व दो व्यक्तियों अथवा दो क़बीले के मध्य हुयी और इस्लाम के पश्चात भी चली आ रही थी। نصيبهم (भाग) से तात्पर्य उसी प्रतिज्ञा तथा संधि के पालन के अनुसार सहायता तथा सहयोग का भाग है। तथा इब्ने कसीर एवं अन्य व्याख्याकारों के निकट यह आयत निरस्त है। क्योंकि أيمانكم उनके निकट वह संधि है जो हिजरत के पश्चात एक अंसारी तथा मुहाजिर के मध्य भाई चारे के रूप में हुई थी। इसमें एक मुहाजिर, अन्सारी के माल का उसके सम्बन्धियों की जगह उत्तराधिकारी होता था। परन्तु चूँकि यह एक अस्थाई व्यवस्था थी, इसलिए फिर

﴿وَأُولُوا الْأَرْحَامِ بَعْضُهُمْ أَوْلَىٰ بِبَعْضٍ فِي كِتَابِ اللَّهِ ۗ إِنَّ اللَّهَ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيمٌ﴾

"सम्बंधी अल्लाह के आदेशानुसार एक-दूसरे के अधिक अधिकारी हैं।" (अल-अन्फ़ाल-७५)

को उतारकर इसको निरस्त कर दिया। अब فأتوهم نصيبهم का तात्पर्य मित्रता प्रेम तथा एक-दूसरे की सहायता है। और वसीयत के अनुसार कुछ दे देना भी सम्मिलित है। संधि के अनुसार, प्रतिज्ञा के अनुसार अथवा भाईचारे के अनुसार अब उत्तराधिकार का विचार नहीं होता है। ज्ञानियों के एक गिरोह ने इससे ऐसे दो व्यक्ति को लिया, जिसमें कम से कम एक व्यक्ति निरुत्तराधिकारी हो और एक-दूसरे से यह तय करता है कि मैं तुम्हारा उत्तराधिकारी हूँ। यदि कोई बड़ा अपराध करूँ तो मेरी सहायता करना और यदि मैं मर जाऊँ तो मेरी देयत (ख़ून के बदले धन) ले लेना। इस निरुत्तराधिकारी के मरने के बाद उसके मालका वह उपरोक्त व्यक्ति उत्तराधिकारी होगा बशर्ते कि वास्तव में उस का कोई उत्तराधिकारी न हो। कुछ दूसरे ज्ञानी इस आयत का एक अन्य अर्थ वर्णित करते हैं। वह कहते हैं والذين عقدت أيمانكم से तात्पर्य पति-पत्नी हैं। इसका

(३४) पुरुष स्त्रियों पर अधिपति हैं इस कारण कि अल्लाह ने एक को दूसरे पर श्रेष्ठता दिया है तथा इस कारण कि पुरूषों ने अपने धन ख़र्च किये हैं,[1] अत: सुशील आज्ञाकारी स्त्रियाँ पति की अनुपस्थिति में अल्लाह की रक्षा द्वारा (मर्यादा एवं धन) की रक्षक नारियाँ हैं और जिन स्त्रियों से तुम्हें दुराचार का भय हो उन्हें सचेत करो, तथा उनका बिस्तर अलग कर दो (फिर भी न मानें) तो मारो और यदि तुम्हारा कहना मान लें तो उन पर मार्ग की खोज न करो ।[2] निश्चय अल्लाह परम महान है ।

اَلرِّجَالُ قَوّٰمُوْنَ عَلَى النِّسَآءِ بِمَا فَضَّلَ اللّٰهُ بَعْضَهُمْ عَلٰى بَعْضٍ وَّبِمَا اَنْفَقُوْا مِنْ اَمْوَالِهِمْ ؕ فَالصّٰلِحٰتُ قٰنِتٰتٌ حٰفِظٰتٌ لِّلْغَيْبِ بِمَا حَفِظَ اللّٰهُ ؕ وَالّٰتِىْ تَخَافُوْنَ نُشُوْزَهُنَّ فَعِظُوْهُنَّ وَاهْجُرُوْهُنَّ فِى الْمَضَاجِعِ وَاضْرِبُوْهُنَّ ۚ فَاِنْ اَطَعْنَكُمْ فَلَا تَبْغُوْا عَلَيْهِنَّ سَبِيْلًا ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلِيًّا كَبِيْرًا ﴿٣٤﴾

सम्बन्ध الأقربـــون से है । अर्थ यह है कि "माता-पिता ने, निकटवर्ती सम्बंधी ने और जिनकी तुम्हारी संधि आपस में हो चुकी है (अर्थात पति अथवा पत्नी) उन्होंने जो कुछ छोड़ा उसके उत्तराधिकारी अर्थात भागीदार हमने निर्धारित कर दिये हैं । अतएव उन उत्तराधिकारियों को उनका अधिकार दे दो ।" अर्थात पिछली आयतों में उत्तराधिकारियों के भाग का जो विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया उसको संक्षेप में यहाँ अदा करने पर बल दिया गया है ।

[1]इसमें पुरुष के अधिपत्य तथा श्रेष्ठता के दो कारण बताये गये हैं । एक दैवी है जो उस की शारीरिक शक्ति तथा तीव्र बुद्धि है, जिस में पुरुष स्त्री से निश्चितरूप से श्रेष्ठ है । दूसरा कारण अर्जित है, जिसको प्राप्त करने का अधिकार इस्लाम धर्म ने पुरुष को दिया है और स्त्री कोउसकी प्राकृतिक कमजोरी तथा विशेष शिक्षा के कारण जो इस्लाम ने स्त्री को चारित्रिक सामर्थ्य और उसकी पवित्रता की रक्षा के लिए आवश्यक बतलायी है, स्त्री को आर्थिक उलझनों से दूर रखा है । स्त्री के नेतृत्व के विरुद्ध क़ुरआन करीम का यह अत्यन्त स्पष्ट दृढ़ तर्क है जिसकी अत्यन्त दृढ़ता बुख़ारी की उस हदीस से होती है कि "वह समुदाय कभी सफल नहीं हो सकता जिसका नेतृत्व एक महिला कर रही हो ।" (सहीह बुख़ारी किताबुल मग़ाज़ी, बाब किताबुन्नबी इला किसरा व क़ैसर, किताबुल फ़ेतन, बाब १८)

[2]अवज्ञाकारिता की स्थिति में सर्वप्रथम स्त्री को समझाना-बुझाना है, फिर अस्थाई रूप से अलग हो जाना है, जो एक बुद्धिमान स्त्री के लिए बहुत बड़ी चेतावनी है । जब इससे

وَإِنْ خِفْتُمْ شِقَاقَ بَيْنِهِمَا فَابْعَثُوا حَكَمًا مِّنْ أَهْلِهِ وَحَكَمًا مِّنْ أَهْلِهَا إِن يُرِيدَا إِصْلَاحًا يُوَفِّقِ اللَّهُ بَيْنَهُمَا إِنَّ اللَّهَ كَانَ عَلِيمًا خَبِيرًا ﴿٣٥﴾

(३५) यदि तुमको (पति-पत्नी के) मध्य अनबन होने का भय हो तो एक पंच पति के परीवार से और एक पत्नी के परिवार से नियुक्त करो,[1] यदि ये दोनों परस्पर संधि कराना चाहें तो अल्लाह उन दोनों को मिला देगा, निश्चय अल्लाह ज्ञाता सूचित है।

وَاعْبُدُوا اللَّهَ وَلَا تُشْرِكُوا بِهِ شَيْئًا وَبِالْوَالِدَيْنِ إِحْسَانًا وَبِذِي الْقُرْبَىٰ وَالْيَتَامَىٰ وَالْمَسَاكِينِ وَالْجَارِ ذِي الْقُرْبَىٰ وَالْجَارِ الْجُنُبِ

(३६) तथा अल्लाह की आराधना करो, उसके साथ किसी को मिश्रण न करो, तथा माता-पिता एवं संवन्धियों, अनाथों, निर्धनों तथा करीव के पड़ोसी एवं दूर के पड़ोसी[2] तथा

भी न माने तो थोड़ी मार मारने की आज्ञा है, परन्तु यह मार पशुतावाली या अत्याचारी न हो जैसाकि अशिक्षित लोगों की आदत है। अल्लाह और उसके रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने इस अत्याचार की आज्ञा किसी पुरुष को नहीं दी है। यदि वह सुधार करले तो मार्ग न खोजो अर्थात मारपीट न करो, तंग न करो, तलाक़ न दो अर्थात तलाक़ अन्तिम सीमा है जब अन्य कोई मार्ग न रह जाये। परन्तु पुरुष इस अधिकार को भी अधिक अनुचित रुप से प्रयोग करते हैं और छोटी-छोटी वात पर तुरन्त तलाक़ दे डालते हैं और अपना जीवन नष्ट करते हैं और साथ ही साथ यदि बच्चे हों तो उनका जीवन भी नष्ट करते हैं।

[1]घर के अन्दर उपरोक्त तीनों प्रयत्न विफल हो जाये तो चौथा उपाय दो मध्यस्थ हैं। यदि सद्‌भावक होंगे तो निश्चय उनकी सुधारने की कोशिश सफल होगी फिर विफलता की दशा में मध्यस्थों को पति-पत्नी में विलगाव अर्थात तलाक़ (विवाह विच्छेद) का अधिकार है अथवा नहीं ? इस में विद्वानों में मतभेद है। कुछ इसे अस्थाई न्यायधीश के निर्णय अथवा पति-पत्नी के विलगाव का अधिकार देने से प्रबंधित करते है, परन्तु साधारण ज्ञानी लोग इसके बिना उस अधिकार को मानते हैं। (विस्तृत जानकारी के लिये तफ़सीर तब्री, फ़तहुल कदीर, तफ़सीर इब्ने कसीर देखिये)

[2] الجار الجنب सम्बन्धी पड़ोसी की तुलना में प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ है ऐसा पड़ोसी जो सम्बन्धी न हो अर्थात यह कि पड़ोसी से पड़ोसी के रूप में प्रेम व्यवहार किया जाय वह सम्बन्धी हो अथवा सम्बन्धी न हो। जिस प्रकार से हदीस में भी इस बात पर वड़ा वल देकर वर्णन किया गया है।

साथ के यात्री[1] के साथ उपकार करो तथा यात्री और जो तुम्हारे अधीन हैं[2] (उनके साथ), नि:संदेह अल्लाह अहंकारी, अभिमानी से प्रेम नहीं करता ।[3]

وَالصَّاحِبِ بِالْجَنْبِ وَابْنِ السَّبِيلِ ۙ وَمَا مَلَكَتْ أَيْمَانُكُمْ ۗ إِنَّ اللَّهَ لَا يُحِبُّ مَنْ كَانَ مُخْتَالًا فَخُورًا ﴿٣٦﴾

(३७) जो लोग (स्वंय) कंजूसी करते हैं और दूसरों को भी कंजूसी करने को कहते हैं और अल्लाह तआला ने जो अपनी कृपा से उन्हें प्रदान कर रखी है, उसे छिपाते हैं । हम ने उन कृतघ्नों के लिए अपमानकारी यातना तैयार कर रखी है ।

الَّذِينَ يَبْخَلُونَ وَيَأْمُرُونَ النَّاسَ بِالْبُخْلِ وَيَكْتُمُونَ مَا آتَاهُمُ اللَّهُ مِنْ فَضْلِهِ ۗ وَأَعْتَدْنَا لِلْكَافِرِينَ عَذَابًا مُهِينًا ﴿٣٧﴾

(३८) और जो लोग अपना माल लोगों को दिखाने के लिए व्यय करते हैं और अल्लाह (तआला) पर तथा क़ियामत के दिन पर

وَالَّذِينَ يُنْفِقُونَ أَمْوَالَهُمْ رِئَاءَ النَّاسِ وَلَا يُؤْمِنُونَ بِاللَّهِ وَلَا بِالْيَوْمِ الْآخِرِ ۗ وَمَنْ يَكُنِ

---

[1]इससे तात्पर्य यह है, यात्रा के साथी, साझीदार, पत्नी तथा वह व्यक्ति जो लाभ की आशा में किसी की निकटता तथा साथ करे । बल्कि इसकी परिभाषा में वह लोग भी आ सकते हैं, जिन्हें शिक्षा प्राप्त करने के लिए अथवा प्रशिक्षण प्राप्त करने लिए अथवा किसी व्यापारिक उद्देश्य से आपके निकट बैठने का अवसर प्राप्त हो । (फ़तहुल क़दीर)

[2]इसमें घर, दूकान, उद्योग, मिलों के कर्मचारी भी आ जाते हैं । दासों के साथ सदव्यवहार पर हदीसों में बड़ा बल दिया गया है ।

[3]घमण्ड, गर्व तथा अभिमान अल्लाह तआला को कदापि प्रिय नहीं है । बल्कि एक हदीस में यहां तक आता है "वह व्यक्ति स्वर्ग में नहीं जायेगा जिसके दिल में राई के एक दाने के समान भी घमण्ड होगा ।" (सहीह मुस्लिम, किताबुल ईमान, बाब तहरीमिल किब्रे व बयानिहि हदीस संख्या ९१) यहां पर घमंड की विशेष रुप से आलोचना करने से यह उद्देश्य है कि अल्लाह तआला की आराधना और जिन-जिन व्यक्तियों से सदव्यवहार करने पर बल दिया गया है, इसके अनुसार कर्म वही कर सकता है, जिसके दिल में घमंड न हो, घमंड से शून्य हो । अभिमानी और अहंकारी व्यक्ति सही अर्थों में न तो इबादत उचित रुप से कर सकता और न अपनों और परायों से सद्व्यवहार ही कर सकता है ।

الشَّيْطٰنُ لَهٗ قَرِيْنًا فَسَآءَ قَرِيْنًا ﴿٣٨﴾

ईमान नहीं रखते, और जिसका संगी-साथी शैतान हो।[1] वह बहुत बुरा साथी है।

وَمَاذَا عَلَيْهِمْ لَوْ اٰمَنُوْا بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَاَنْفَقُوْا مِمَّا رَزَقَهُمُ اللّٰهُ ۭ وَكَانَ اللّٰهُ بِهِمْ عَلِيْمًا ﴿٣٩﴾

(३९) और भला उन की क्या हानि थी यदि यह अल्लाह (तआला) पर और प्रलय (क़ियामत) के दिन पर ईमान लाते और अल्लाह (तआला) ने जो उन्हें प्रदान कर रखा है, उसमें से ख़र्च करते, अल्लाह (तआला) उन्हें अच्छी प्रकार से जानने वाला है।

اِنَّ اللّٰهَ لَا يَظْلِمُ مِثْقَالَ ذَرَّةٍ ۚ وَاِنْ تَكُ حَسَنَةً يُّضٰعِفْهَا وَيُؤْتِ مِنْ لَّدُنْهُ اَجْرًا عَظِيْمًا ﴿٤٠﴾

(४०) नि:संदेह, अल्लाह (तआला) एक कण के बराबर अत्याचार नहीं करता और यदि पुण्य हो तो उसे दुगुना कर देता है एवं विशेष रूप से अपने पास से बहुत बड़ा प्रत्युपकार प्रदान करता है।

فَكَيْفَ اِذَا جِئْنَا مِنْ كُلِّ اُمَّةٍۢ بِشَهِيْدٍ وَّجِئْنَا بِكَ عَلٰي هٰٓؤُلَاۗءِ شَهِيْدًا ﴿٤١﴾

(४१) तो क्या हाल होगा जिस समय प्रत्येक समुदाय (उम्मत) में से एक गवाह हम लायेंगे और आप को उन लोगों पर गवाह बनाकर लायेंगे।[2]

---

[1]कंजूसी (अर्थात अल्लाह के मार्ग में व्यय न करना) अथवा व्यय तो करना परन्तु प्रदर्शन और दिखावे के लिए करना। यह दोनों बातें अल्लाह को अति अप्रिय हैं। और उनकी निन्दा के लिए यह बात ही काफ़ी है कि यहाँ क़ुरआन करीम में इन दोनों बातों को काफ़िरों का आचरण बताया गया है जो अल्लाह और अन्त दिवस के प्रति विश्वास नहीं रखते और शैतान उनका साथी है।

[2]प्रत्येक समुदाय (उम्मत) का पैग़म्बर (सन्देष्टा) अल्लाह के सदन में गवाही देगा "हे अल्लाह ! हमने तो तेरा संदेश अपनी क़ौम तक पहुँचा दिया था। अब उन्होंने नहीं माना तो इसमें हमारा क्या अपराध है ?" फिर उन पर नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम गवाही देंगे "हे अल्लाह ! यह सत्य कहते हैं।" आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम यह गवाही उस क़ुरआन के कारण देंगे जो आप पर उतरा और जिसमें पूर्व के नबियों और उनकी क़ौम की घटनायें आवश्यकतानुसार वर्णित हैं। यह एक कठिन

(४२) जिस दिन काफ़िर और रसूल के अवज्ञा-कारी यह कामना करेंगे कि काश उन्हें धरती के साथ समतल कर दिया जाता और अल्लाह (तआला) से कोई बात न छिपा सकेंगे।

يَوْمَئِذٍ يَوَدُّ الَّذِينَ كَفَرُوا وَعَصَوُا الرَّسُولَ لَوْ تُسَوَّىٰ بِهِمُ الْأَرْضُ وَلَا يَكْتُمُونَ اللَّهَ حَدِيثًا ﴿٤٢﴾

(४३) हे ईमानवालो ! यदि तुम नशे में धुत हो तो नमाज़ के निकट न जाओ[1] जब तक

يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا لَا تَقْرَبُوا

अवस्था होगी, इसका विचार ही शरीर में कँपकँपी उत्पन्न कर देता है। हदीस में आता है कि एक बार नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने आदरणीय अब्दुल्लाह इब्ने मसऊद से क़ुरआन सुनने की इच्छा व्यक्त की वह सुनाते हुए जब इस आयत पर पहुँचे तो आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया, "बस अब काफ़ी है।" आदरणीय इब्ने मसऊद फ़रमाते हैं "मैंने देखा तो आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की आँखों से अश्रु प्रवाहित थे।" (सहीह बुख़ारी फ़ज़ाएले क़ुरआन) कुछ लोग कहते हैं कि गवाही तभी दी जा सकती है जब सभी कुछ गवाह अपनी आँखों से देखे। इसलिए वह शहीद का अर्थ "सर्वव्यापी" सिद्ध करते हैं और इस प्रकार नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को प्रत्येक स्थान पर विद्यमान सिद्ध करते हैं, परन्तु नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को प्रत्येक स्थान पर उपस्थित समझना आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को अल्लाह के गुणों में सम्मिलित करना है, जो शिर्क है। क्योंकि प्रत्येक स्थान पर अल्लाह तआला ही का अपने ज्ञान के द्वारा उपस्थित होने का गुण है। "शहीद" के शब्द से यह भाव निकालना अपने अन्दर कोई शक्ति नहीं रखता, इसलिए कि गवाही निश्चित ज्ञान के आधार पर भी होती है और क़ुरआन करीम में वर्णित सत्य घटनाओं से अधिक निश्चित ज्ञान किसका हो सकता है ? इसी निश्चित ज्ञान के आधार पर स्वयं मुसलमानों को भी "شهداء على الناس" (सृष्टि के लोगों पर गवाह) कहा है। यदि गवाही के लिए उपस्थिति आवश्यक है, तो प्रत्येक मुसलमान व्यक्ति को सर्वव्यापी मानना पड़ेगा। अन्ततः नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के विषय में यह विश्वास मिश्रणवाद एवं निराधार है।

[1]यह आदेश उस समय दिया गया था, जब तक मदिरा निषेध नहीं की गयी थी। अतः एक भोज में मदिरापान के पश्चात जब नमाज़ के लिए खड़े हुए, तो नशे में क़ुरआन के शब्द भी इमाम साहब ग़लत पढ़ गये। (विस्तार के लिए देखिए त्रिमज़ी, तफ़सीर सूरः अल निसा) जिस पर यह आयत उतरी कि नशे की अवस्था में नमाज़ न पढ़ा करो। अर्थात उस समय तक नमाज़ के समय मदिरापान निषेध किया गया था पूर्ण निषेधाज्ञा और वर्जित होने का आदेश बाद में उतरा।

الصَّلٰوةَ وَاَنْتُمْ سُكٰرٰى حَتّٰى تَعْلَمُوْا مَا تَقُوْلُوْنَ وَلَا جُنُبًا اِلَّا عَابِرِىْ سَبِيْلٍ حَتّٰى تَغْتَسِلُوْا ؕ وَاِنْ كُنْتُمْ مَّرْضٰٓى اَوْ عَلٰى سَفَرٍ اَوْ جَآءَ اَحَدٌ مِّنْكُمْ مِّنَ الْغَآئِطِ اَوْ لٰمَسْتُمُ النِّسَآءَ فَلَمْ تَجِدُوْا مَآءً فَتَيَمَّمُوْا صَعِيْدًا طَيِّبًا فَامْسَحُوْا بِوُجُوْهِكُمْ وَاَيْدِيْكُمْ ؕ

कि अपनी बात समझने न लगो, और जनाबत (अशुद्धि) की अवस्था में जब तक स्नान न कर लो[1] हाँ, यदि राह चलते गुजर जाने वाले हो तो और बात है।[2] और यदि तुम रोगी हो, अथवा यात्रा में हो अथवा तुम में से कोई शौच से आया हो अथवा तुमने स्त्रियों के साथ संभोग किया हो और तुम्हें पानी न मिले, तो पवित्र मिट्टी का संकल्प करो और अपने मुँह और अपने हाथ मल लो।[3] निःसंदेह अल्लाह

---

[1]अर्थात अपवित्रता की अवस्था में भी नमाज़ न पढ़ो क्योंकि नमाज़ के लिए पवित्रता आवश्यक है।

[2]इसका अर्थ यह नहीं है कि यात्रा की अवस्था में यदि पानी न मिले तो अपवित्रता की अवस्था में ही नमाज़ पढ़ लो (जैसा कि कुछ ने कहा है) बल्कि अधिक आलिमों का मत है कि अपवित्रता की अवस्था में तुम मस्जिद में न बैठो, परन्तु यदि मस्जिद के अन्दर से जाना पड़ जाये तो जा सकते हो। कुछ सहाबा के घर ऐसे थे कि उनको हर परिस्थिति में मस्जिद-ए-नबवी के अन्दर से गुज़र कर जाना पड़ता था यह छूट उन्हीं के कारण प्रदान की गयी। (इब्ने कसीर) वरन् यात्री का आदेश आगे आ रहा है।

[3]रोगी से तात्पर्य वह रोगी है जिसे पानी के प्रयोग से हानि अथवा रोग के बढ़ जाने का भय हो (२) सामान्य यात्री, लम्बी यात्रा हो अथवा लघु, यदि पानी उपलब्ध न हो तो तयम्मुम करने की आज्ञा है। पानी न मिलने की स्थिति में यह आज्ञा निवासी को भी है, परन्तु रोगी तथा यात्री को चूँकि इस प्रकार की आवश्यकता सामान्यतय: आती थी इसलिए विशेषरुप से उनके लिए आज्ञा का वर्णन कर दिया गया है (३) शौच से आने वाला (४) तथा पत्नी के साथ सम्भोग करने वाला, उनको भी पानी न मिलने की स्थिति में तयम्मुम करके नमाज़ पढ़ने की आज्ञा है।

तयम्मुम की विधि : यह है कि एक ही बार हाथ पवित्र जमीन पर मारकर कलाई तक दोनों हाथ एक-दूसरे पर फेर लें (कोहनियों तक आवश्यक नहीं) और मुँह पर भी फेर ले قال فى التيمم «ضَرْبَةٌ لِلْوَجْهِ والكَفَّيْنِ» (मुसनद अहमद, भाग ४ पृष्ठ २६३) अम्मार (رضي الله عنه) ने कहा, "नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने तयम्मुम के विषय में फ़रमाया कि यह दोनों हथेलियों तथा चेहरे के लिए एक ही बार है«صَعِيدًا طَيِّبًا»से तात्पर्य पवित्र मिट्टी है। ज़मीन से निकलने वाली प्रत्येक चीज़ नहीं जैसा कि क़ुछ का विचार है। हदीस में विशेषरूप से स्पष्ट कर दिया गया है«جُعِلَتْ تُرْبَتُهَا لَنَا طَهُورًا إِذَا لَمْ نَجِدِ الْمَاءَ»

إِنَّ اللَّهَ كَانَ عَفُوًّا غَفُورًا ﴿٤٣﴾

(तआला) अति क्षमा (माफ़) करने वाला बख़्शने वाला है।

أَلَمْ تَرَ إِلَى الَّذِينَ أُوتُوا نَصِيبًا مِّنَ الْكِتَابِ يَشْتَرُونَ الضَّلَالَةَ وَيُرِيدُونَ أَن تَضِلُّوا السَّبِيلَ ﴿٤٤﴾

(४४) क्या तुम ने उन्हें नही देखा जिन्हें किताब का कुछ भाग दिया गया ? वह पथ-भ्रष्टता खरीदते हैं और चाहते हैं कि तुम भी विपथ हो जाओ।

وَاللَّهُ أَعْلَمُ بِأَعْدَائِكُمْ ۚ وَكَفَىٰ بِاللَّهِ وَلِيًّا وَكَفَىٰ بِاللَّهِ نَصِيرًا ﴿٤٥﴾

(४५) और अल्लाह (तआला) तुम्हारे शत्रुओं को भली प्रकार से जानने वाला है और अल्लाह (तआला) का मित्र होना ही पर्याप्त है तथा अल्लाह (तआला) का सहायक होना बस है।

مِّنَ الَّذِينَ هَادُوا يُحَرِّفُونَ الْكَلِمَ عَن مَّوَاضِعِهِ وَيَقُولُونَ سَمِعْنَا وَعَصَيْنَا وَاسْمَعْ غَيْرَ مُسْمَعٍ وَرَاعِنَا لَيًّا بِأَلْسِنَتِهِمْ وَطَعْنًا فِي الدِّينِ ۚ وَلَوْ أَنَّهُمْ قَالُوا سَمِعْنَا وَأَطَعْنَا وَاسْمَعْ وَانظُرْنَا لَكَانَ خَيْرًا لَّهُمْ

(४६) कुछ यहूदी कथनों को उनके उचित स्थान से फेर बदल कर देते हैं और कहते हैं कि हमने सुना और अवज्ञा की और सुन उस के बिना कि तो सुना जाये[1] और हमारी अधीनता स्वीकार करो (परन्तु इसके कहने में) अपनी जीभ मरोड़ लेते हैं और धर्म को कलंकित करते हैं, और यदि यह लोग कहते कि हमने सुना और हमने मान लिया और आप सुनिये और हमें देखिये तो यह उनके

"जब हमें पानी न मिले तो जमीन की मिट्टी हमारे लिए पवित्र बना दी गयी है।" (सहीह मुस्लिम किताबुल मसाजिद)"

[1]यहूदियों के दुराचरणों तथा कुकर्मों में से यह भी एक था कि "हमने सुना के साथ ही कह देते परन्तु हम पालन नहीं करेंगे" "अर्थात अनुसरण नहीं करेंगे।" यह दिल में कहते अथवा अपने साथियों से कहते अथवा निर्भयता का प्रदर्शन करके मुँह पर कहते। इसी प्रकार غير مسمع (तेरी बात न सुनी जाये) यह शाप के रूप में कहते अर्थात तेरी बात स्वीकार न हो। راعنا के विषय में सूर: बक़र: आयत १०४ की व्याख्या में वर्णन हो चुका है।

وَاَقْوَمَ ۙ وَلٰكِنْ لَّعَنَهُمُ اللّٰهُ بِكُفْرِهِمْ فَلَا يُؤْمِنُوْنَ اِلَّا قَلِيْلًا ﴿٤٦﴾

लिए अति श्रेष्ठ था और अत्यधिक उचित था, परन्तु अल्लाह (तआला) ने उनके कुफ़्र के कारण से उन्हें धिक्कारा है, तो यह बहुत कम ईमान लाते हैं ।[1]

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ اٰمِنُوْا بِمَا نَزَّلْنَا مُصَدِّقًا لِّمَا مَعَكُمْ مِّنْ قَبْلِ اَنْ نَّطْمِسَ وُجُوْهًا فَنَرُدَّهَا عَلٰٓى اَدْبَارِهَآ اَوْ نَلْعَنَهُمْ كَمَا لَعَنَّآ اَصْحٰبَ السَّبْتِ ۭ وَكَانَ اَمْرُ اللّٰهِ مَفْعُوْلًا ﴿٤٧﴾

(४७) हे अहले किताब ! जो कुछ हमने उतारा है, जो उसका प्रमाणकारी है जो तुम्हारे पास है, इस पर उससे पहले ईमान लाओ कि हम चेहरे बिगाड़ दें और उन्हें घुमा कर पीठ की ओर कर दें[2] अथवा उन पर धिक्कार भेजें जैसाकि हमने शनिवार वाले दिन के लोगों पर धिक्कार की है ।[3] और अल्लाह (तआला) का निर्णय अवश्य पूरा किया हुआ है ।[4]

اِنَّ اللّٰهَ لَا يَغْفِرُ اَنْ يُّشْرَكَ بِهٖ وَيَغْفِرُ مَا دُوْنَ ذٰلِكَ لِمَنْ يَّشَاۗءُ ۚ

(४८) अवश्य अल्लाह (तआला) अपने साथ मिश्रण किये जाने को क्षमा नहीं करता और इसके अतिरिक्त जिसे चाहे क्षमा कर दे ।[5]

---

[1]अर्थात ईमान लाने वाले बहुत थोड़े हैं, जैसा कि पहले वर्णन हो चुका है कि यहूदियों में से ईमान लाने वालों की संख्या दस तक भी नहीं पहुँची अथवा यह अर्थ है कि बहुत कम बातों पर ईमान लाते हैं, जब कि लाभकारी ईमान यह है कि सब बातों पर ईमान लाया जाये ।

[2]अर्थात यदि अल्लाह तआला चाहे तो तुम्हें तम्हारे कुकर्मों के बदले में यह दंड दे सकता है ।

[3]यह घटना सूर: अल-आराफ़ में आयेगी, कुछ संकेत पहले भी गुजर चुके हैं । अर्थात तुम भी उन्हीं के समान तिरस्कृत हो सकते हो ।

[4]अर्थात जब वह किसी बात का आदेश कर दे तो न कोई उसका विरोध कर सकता है और न उसे रोक सकता है ।

[5]अर्थात ऐसे पाप जिनसे ईमान वाले क्षमा मागें बिना मर जायें, अल्लाह तआला यदि किसी को चाहे तो बिना दंड दिये क्षमा कर देगा, बहुत से लोगों को दंड देने के बाद और बहुत से लोगों को नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की शिफ़ाअत (सिफ़ारिश) पर

وَمَن يُشْرِكْ بِاللَّهِ فَقَدِ افْتَرَىٰ إِثْمًا عَظِيمًا ﴿٤٨﴾

और जो अल्लाह (तआला) के साथ मिश्रण करे उसने अल्लाह पर भारी आरोप घड़ा ।[1]

أَلَمْ تَرَ إِلَى الَّذِينَ يُزَكُّونَ أَنفُسَهُم ۚ بَلِ اللَّهُ يُزَكِّي مَن يَشَاءُ وَلَا يُظْلَمُونَ فَتِيلًا ﴿٤٩﴾

(४९) क्या आपने उन्हें नहीं देखा जो अपनी पवित्रता (और प्रशंसा) स्वयं करते हैं ? बल्कि अल्लाह (तआला) जिसे चाहे पवित्र करता है, तथा वे एक धागे बराबर भी अत्याचार न किये जायेंगे ।[2]

انظُرْ كَيْفَ يَفْتَرُونَ عَلَى اللَّهِ الْكَذِبَ ۖ وَكَفَىٰ بِهِ إِثْمًا مُّبِينًا ﴿٥٠﴾

(५०) देखो यह लोग अल्लाह (तआला) पर किस प्रकार मिथ्यारोपण करते हैं[3] तथा यह घोर पाप के लिये बहुत है ।[4]

क्षमा कर देगा, परन्तु शिर्क किसी भी परिस्थिति में क्षमा नहीं होगा क्योंकि मुशरिक पर अल्लाह तआला ने स्वर्ग (हराम) निषेध कर दिया है ।

[1]दूसरे स्थान पर फ़रमाया ﴿إِنَّ الشِّرْكَ لَظُلْمٌ عَظِيمٌ﴾ (लुकमान) "शिर्क बहुत बड़ा अत्याचार है ।" हदीस में इसे महापाप कहा गया है "أكبر الكبائر الشرك بالله" ।

[2]यहूदी अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनते थे । जैसे "हम अल्लाह के बेटे तथा उसके चहीते हैं" आदि । अल्लाह तआला ने फ़रमाया, "पवित्रता का अधिकार भी अल्लाह को है और उसका ज्ञान भी उसी को है ।" "फ़तील" खजूर की गुठली के कटाव पर जो धागा अथवा सूत के समान निकलता हुआ दिखायी देता है, उसको कहा जाता है । अर्थात इतना-सा भी अत्याचार नहीं किया जायेगा ।

[3]अर्थात उपरोक्त पवित्रता का दावा करके ।

[4]अर्थात उनका यह व्यवहार (अपनी पवित्रता का दावा) उनके झूठ और बनावट के लिए पर्याप्त है । क़ुरआन करीम की इस आयत और उसके उतरने की विशेषताओं के कथनों से यह ज्ञात होता है कि एक-दूसरे की प्रशंसा तथा गुणगान विशेष कर दिलों की पवित्रता का दावा करना ठीक एवं उचित नहीं । इस बात को क़ुरआन करीम में दूसरे स्थान पर इस प्रकार फ़रमाया गया है :

﴿فَلَا تُزَكُّوا أَنفُسَكُمْ ۖ هُوَ أَعْلَمُ بِمَنِ اتَّقَىٰ﴾

"स्वयं अपनी पवित्रता और प्रशंसा न करो, अल्लाह तआला ही जानता है कि तुम में संयमी कौन है ।" (*अल-नजम-३२*)

(५१) क्या आपने उन्हें नहीं देखा जिन्हें किताब का कुछ भाग मिला है, जो मूर्तियों पर तथा भूठे देवों पर विश्वास रखते हैं, और काफ़िरों के पक्ष में कहते हैं कि यह लोग ईमानवालों से अधिक सत्यमार्ग पर हैं ?[1]

أَلَمْ تَرَ إِلَى الَّذِينَ أُوتُوا نَصِيبًا مِّنَ الْكِتَٰبِ يُؤْمِنُونَ بِالْجِبْتِ وَالطَّٰغُوتِ وَيَقُولُونَ لِلَّذِينَ كَفَرُوا هَٰٓؤُلَآءِ أَهْدَىٰ مِنَ الَّذِينَ ءَامَنُوا سَبِيلًا ﴿٥١﴾

(५२) यही वह लोग हैं जिनको अल्लाह (तआला) ने धिक्कारा है और जिसे अल्लाह (तआला) धिक्कार दे तो तू किसी को उसका सहायता करने वाला नहीं पायेगा।

أُولَٰٓئِكَ الَّذِينَ لَعَنَهُمُ اللَّهُ ۖ وَمَن يَلْعَنِ اللَّهُ فَلَن تَجِدَ لَهُۥ نَصِيرًا ﴿٥٢﴾

हदीस में है आदरणीय मिकदाद (رضي الله عنه) कहते हैं "नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने हमें आदेश दिया कि प्रशंसा करने वालों के मुख पर मिट्टी डाल दें।" «أَنْ نَحْثُوَ فِي وُجُوهِ الْمَدَّاحِينَ التُّرَابَ» (सहीह मुस्लिम किताबुज़ ज़ुहद)

एक अन्य हदीस में है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने एक आदमी को दूसरे आदमी की प्रशंसा करते सुना तो फ़रमाया :

«وَيْحَكَ قَطَعْتَ عُنُقَ صَاحِبِكَ». "अफ़सोस है तुझ पर कि तूने अपने साथी की गर्दन काट दी।"

फिर फ़रमाया कि यदि तुम में से किसी को किसी की विवश होकर प्रशंसा करनी है, तो इस प्रकार कहा करे «أَحْسِبُهُ كَذَا» "मैं उसे इस प्रकार समझता हूँ, अल्लाह पर किसी की स्वच्छता न वर्णित करे।" (सहीह बुखारी किताबुश शहादात वल अदब, मुस्लिम किताबुज़ ज़ुहद)

[1]इस आयत में यहूदियों के एक और कर्म पर आश्चर्य व्यक्त किया गया है कि अहले किताब होने के उपरान्त यह "जिब्त" (मूर्ति, ज्योतिषी अथवा जादूगर) तथा ताग़ूत (झूठे देवों) पर ईमान रखते हैं और मक्का के काफ़िरों को मुसलमानों से अधिक सत्य मार्ग पर समझते हैं। जिब्त के यह सभी वर्णित अर्थ किय गये हैं। एक हदीस मे आता है।

«إِنَّ الْعِيَافَةَ وَالطَّرْقَ وَالطِّيَرَةَ مِنَ الْجِبْتِ».

"पक्षी उड़ा कर, रेखा खींचकर भाग्य जानना एवं अपशगुन लेना जिब्त से हैं।" (सुनन अबी दाऊद किताबुत तिब)

अर्थात यह शैतानी काम हैं। यहूदियों में यह बातें सामान्य रूप में पायी जाती थीं। ताग़ूत का एक अर्थ शैतान भी किया गया है। वास्तव में भूठे देवों की पूजा शैतान ही का अनुसरण है, इसलिए शैतान भी अवश्य ताग़ूत में सम्मिलित है।

(५३) क्या उनका कोई भाग राज्य में है ? यदि ऐसा हो तो फिर यह किसी को एक खजूर की गुठली की फाँक के समान भी कुछ न देंगे ।[1]

أَمْ لَهُمْ نَصِيبٌ مِّنَ الْمُلْكِ فَإِذًا لَّا يُؤْتُونَ النَّاسَ نَقِيرًا ۝٥٣

(५४) अथवा यह लोगों से ईर्ष्या रखते हैं, उस पर जो अल्लाह (तआला) ने अपनी कृपा से उन्हें प्रदान किया है ।[2] तो हमने तो इब्राहीम की संतान को किताब तथा विवेक भी प्रदान किया है और बड़ा राज्य भी प्रदान किया है ।

أَمْ يَحْسُدُونَ النَّاسَ عَلَىٰ مَا آتَاهُمُ اللَّهُ مِن فَضْلِهِ ۖ فَقَدْ آتَيْنَا آلَ إِبْرَاهِيمَ الْكِتَابَ وَالْحِكْمَةَ وَآتَيْنَاهُم مُّلْكًا عَظِيمًا ۝٥٤

(५५) फिर उनमें से कुछ ने तो उस किताब को माना और कुछ उससे रुक गये ।[3] और नरक का जलाना पर्याप्त है ।

فَمِنْهُم مَّنْ آمَنَ بِهِ وَمِنْهُم مَّن صَدَّ عَنْهُ ۚ وَكَفَىٰ بِجَهَنَّمَ سَعِيرًا ۝٥٥

---

[1]यह नकारात्मक प्रश्न है अर्थात राज्य में इनका कोई भाग नहीं है । यदि इसमें थोड़ा सा भी भाग होता तो यह यहूदी लोग इतने कंजूस हैं कि लोगों को विशेष रूप से परम आदरणीय मोहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को इतना भी न देते, जिससे खजूर की गुठली की फाँक वाला भाग भर जाये । نقير नक़ीर उस विन्दु को कहते हैं जो खजूर की गुठली के ऊपर होता है । (इब्ने कसीर)

[2] أم (अम्), بل (बल्) के अर्थों में भी हो सकता है अर्थात वल्कि यह इस बात पर जलते हैं कि अल्लाह तआला ने इस्राईल की सन्तान को छोड़ कर दूसरों में नबी (अर्थात अन्तिम नबी) क्यों बनाया ? नबूवत अल्लाह की सबसे बड़ी कृपा है ।

[3]अर्थात इस्राईल की संतान को जो आदरणीय इब्राहीम के परिवार एवं वंश में से हैं, हमने नबूवत भी दी और बड़ा राज्य तथा राज्याधिकार भी । फिर भी यह सभी यहूदी उन पर ईमान नहीं लाये कुछ ईमान लाये और कुछ रुक गये । तात्पर्य यह है कि हे मोहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम, यदि यह आप पर ईमान नहीं ला रहे हैं तो यह कोई अनोखी बात नहीं है, इनका तो इतिहास ही नबियों को झुठलाने से भरा पड़ा है । यहाँ तक कि यह तो अपने वंश के नबियों पर भी ईमान नही लाये । कुछ ने آمن به में (ही) सर्वनाम से तात्पर्य नबी सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम को बताया है । अर्थात उन यहूदियों में कुछ नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम पर ईमान लाये और कुछ ने नकारा । इन इंकार करने वालों का अन्त नरक है ।

إِنَّ الَّذِينَ كَفَرُوا بِآيَاتِنَا سَوْفَ نُصْلِيهِمْ نَارًا كُلَّمَا نَضِجَتْ جُلُودُهُم بَدَّلْنَاهُمْ جُلُودًا غَيْرَهَا لِيَذُوقُوا الْعَذَابَ ۗ إِنَّ اللَّهَ كَانَ عَزِيزًا حَكِيمًا ﴿٥٦﴾

(५६) जिन लोगों ने हमारी आयतों का इंकार किया उन्हें हम अवश्य अग्नि में ड़ाल देंगे ।[1] जब उन की खालें (चर्म) पक जायेंगी, हम उनके अतिरिक्त और खालें बदल देंगे, ताकि वह यातना का स्वाद चखते रहें ।[2] अवश्य अल्लाह तआला प्रभुत्वशाली बुद्धिमान है ।

وَالَّذِينَ آمَنُوا وَعَمِلُوا الصَّالِحَاتِ سَنُدْخِلُهُمْ جَنَّاتٍ تَجْرِي مِن

(५७) और जो लोग ईमान लाये और सभ्य कर्म किये ।[3] हम निकट भविष्य में उन्हें उन

---

[1]अर्थात नरक में अहले किताब के नकारने वाले ही नहीं जायंगे, बल्कि अन्य काफ़िरों का ठिकाना भी नरक ही है ।

[2]यहं नरक की यातना की कठोरता, निरन्तरता तथा नित्यता का वर्णन है । सहाबा केराम (رضي الله عنهم) द्वारा कथित कुछ वक्यों में बताया गया है कि खालों का यह बदलना दिन में बिसियों बल्कि सैकड़ों वार होगा और मुसनद अहमद के अनुसार "नरकवासी नरक में इतने फूल जायेंगे कि उनके कानों की लौ से पीछे गर्दन तक की दूरी सात सौ वर्ष की यात्रा के समान होगी, उनकी खाल की मोटाई सत्तर बालिश्त और जबड़े ओहद पर्वत जितने होंगे ।"

[3]काफ़िरों की अपेक्षा ईमानवालों के लिए जो चिरस्थाई सुख-सुविधा प्राप्त होंगी, उनका वर्णन है, परंतु वह ईमानवाले जो सत्कर्मों से परिपूर्ण होंगे جعلنا الله منهم । अल्लाह तआला ने क़ुरआन करीम में ईमान के साथ सत्कर्म की महत्ता को स्पष्ट कर दिया है कि उनका आपस में तल-जल का सम्बन्ध है । ईमान सत्कर्म के बिना उसी प्रकार है जैसे बिना सुगंध के फूल और बिना फल के वृक्ष । सहाबा केराम (رضي الله عنهم) तथा सत्यकाल के अन्य मुसलमानों ने इस बिन्दु को जान लिया था । अत: उनके जीवन ईमान के फल, सत्कर्म से प्रफुल्लित थे । उस काल में अकर्म अथवा कुकर्म के साथ ईमान की कल्पना ही नहीं थी । इसके विपरीत आजकल ईमान खाली ज़बानी जमा ख़र्च का नाम रह गया है । ईमान के दावेदारों के दामन सत्कर्म से शून्य हैं । هدانا الله تعالى इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति ऐसे कर्म करता है जो सत्कर्म की सीमा में आते हैं । जैसे ईमानदारी, सच्चाई, परोपकार, नि:स्वार्थ सेवा, सहानुभूति आदि अन्य सभ्यतापूर्ण विशेषतायें । परन्तु यह ईमान के गुण से वंचित हैं, तो उसके यह कर्म दुनिया में प्रसिद्ध तथा सम्मान का कारण तो बन सकते हैं, परन्तु अल्लाह के दरबार में उनका कोई स्थान नहीं है । इसलिए कि उनका स्रोत ईमान नहीं है जो अच्छे कर्म को अल्लाह

تَحْتِهَا الْأَنْهٰرُ خٰلِدِيْنَ فِيْهَآ اَبَدًا ۭ لَهُمْ فِيْهَآ اَزْوَاجٌ مُّطَهَّرَةٌ ۡ وَّنُدْخِلُهُمْ ظِلًّا ظَلِيْلًا ۝

स्वर्गों मे ले जायेंगे, जिनके नीचे नहरें प्रवाहित हैं, जिनमें वे सदैव रहेंगे। उनके लिए वहाँ पवित्र पत्नियाँ होंगी और हम उन्हें घनी छाँव (पूर्ण सुविधाजनक स्थान) में ले जायेंगे।[1]

اِنَّ اللّٰهَ يَاْمُرُكُمْ اَنْ تُؤَدُّوا الْاَمٰنٰتِ اِلٰٓى اَهْلِهَا ۙ وَاِذَا حَكَمْتُمْ بَيْنَ النَّاسِ اَنْ تَحْكُمُوْا

(५८) अल्लाह (तआला) तुम्हें आदेश देता है कि अमानत (धरोहर) उन के मालिकों को पहुँचा दो।[2] और जब लोगों के मध्य निर्णय

तआला की ओर सम्बन्धित करता है। बल्कि केवल मात्र सांसारिक लाभ तथा समाजिक सभ्यता के बंधन के आधार पर है।

[1]घनी, गहरी, ठंढ तथा पवित्र छाया। जिसका अनुवाद "पूर्ण सुविधा" किया गया है। एक हदीस में हैं "स्वर्ग में एक वृक्ष है जिसकी छाया इतनी है कि एक सवार सौ वर्ष में भी उसे तय नहीं कर सकेगा। इस वृक्ष का नाम अलखुल्द है।" (मुसनद अहमद, भाग २ पृष्ठ ४५५, व असलुहु फी अल-बुखारी किताब (बदउल ख़ल्क़) अध्याय (बाब) संख्या ८, माजाअ फ़ी सिफ़ तिल जन्न: व अन्नहा मख़लूक़:)।

[2]अधिकतर व्याख्याकारों का यह मत है कि यह आयत आदरणीय उस्मान बिन तल्हा के सम्मान में उतरी है, जो अपने पूर्वजों से पारम्परिक रूप से ख़ाना-ए-काआबा के संतरी तथा उसके कुंजी धारक चले आ रहे थे। मक्का विजय के समय जब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ख़ाना-ए-कआबा में परिक्रमा के लिए पधारे, तो परिक्रमा आदि के पश्चात आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने आदरणीय उस्मान बिन तल्हा को, जो हुदैबिया की संधि के समय मुसलमान हो चुके थे, बुलाया और उन्हें ख़ाना-ए-कआबा की चाभियाँ प्रदान करते हुए फ़रमाया, "यह तुम्हारी चाभियाँ हैं, और आज का दिन प्रतिज्ञा पालन तथा पुण्य का दिन है।" (इब्ने कसीर) यह आयत एक विशेष कारण से उतरी परन्तु इसका भावार्थ सार्वजनिक तथा अधिकारियों दोनों के लिए है। दोनों के लिए आदेश है कि धरोहर उन्हें लौटा दो, जो धरोहर के अधिकारी हैं। इसमें एक प्रकार की वह धरोहर है, जो किसी के पास रखवायी जाती है। उसमें अपभोग न किया जाये, बल्कि यह उसी प्रकार से धरोहर रखने वाले को लौटा दिया जाये। दूसरे यह कि पद और सम्मान योग्य व्यक्तियों को ही प्रदान किये जायें केवल राजनीतिक आधार पर, वंश अथवा राष्ट्रीयता के आधार अथवा निकटवर्ती अथवा सम्बन्ध के आधार अथवा पद सुरक्षित के आधार पर पद तथा सम्मान देना इस आयत के विपरीत है।

بِالْعَدْلِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ نِعِمَّا يَعِظُكُمْ بِهٖ ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ سَمِيْعًۢا بَصِيْرًا ۝

करो तो न्याय के साथ निर्णय करो ।[1] नि:संदेह वह अच्छी बात है जिसकी शिक्षा अल्लाह (तआला) तुम्हें दे रहा है ।[2] नि:संदेह अल्लाह (तआला) सुनता देखता है ।

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْۤا اَطِيْعُوا اللّٰهَ وَاَطِيْعُوا الرَّسُوْلَ وَاُولِي الْاَمْرِ مِنْكُمْ ۚ فَاِنْ تَنَازَعْتُمْ فِيْ شَيْءٍ

(५९) हे ईमान वालो ! अल्लाह की आज्ञा का पालन करो तथा ईशदूत (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की और अपने में से अधिकारियों की आज्ञा का पालन करो ।[3] फिर यदि किसी

---

[1]इसमें अधिकारियों को विशेषरूप से न्याय करने का आदेश दिया गया है । एक हदीस में है अधिकारी जब तक अत्याचार न करे, अल्लाह तआला उसके साथ होता है, जब वह अत्याचार करना प्रारम्भ कर देता है, अल्लाह उसको उसकी इन्द्रियों को सौंप देता है । (सुनन इब्ने माजा, किताबुल अहकाम)

[2]अर्थात धरोहर उसके योग्य लोगों को सौंपना तथा न्याय करना ।

[3]"अपने में से अधिकारी से तात्पर्य" कुछ के निकट राज्य अधिकारी और कुछ के निकट धर्माधिकारी तथा ज्ञानी हैं भावार्थ के आधार पर दोनों ही हो सकते हैं । तात्पर्य यह है कि वास्तविक आज्ञापालन तो अल्लाह तआला ही का है । क्योंकि

﴿ أَلَا لَهُ الْخَلْقُ وَالْأَمْرُ ﴾

"सावधान ! सृष्टि भी उसी की है, आदेश भी उसी का है ।" (*अल-आराफ़-५४*)

परन्तु रसूल केवल अल्लाह की इच्छाओं के प्रतिनिधि हैं और उसके दूत हैं, इसलिए अल्लाह तआला ने अपने साथ रसूल के आदेश का भी स्थाई रूप से पालन आवश्यक बताया है । और फ़रमाया कि वास्तव में रसूल के आदेशों का पालन अल्लाह की आज्ञा का पालन है ।

﴿ مَنْ يُطِعِ الرَّسُولَ فَقَدْ أَطَاعَ اللَّهَ ﴾

"जिसने रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की आज्ञा का पालन किया उसने अल्लाह का आज्ञापालन किया ।" (अन-निसा-८०)

जिससे यह बात स्पष्ट हुई कि हदीस भी उसी प्रकार धर्म का श्रोत है, जिस प्रकार कुरआन करीम है, फिर राजाधिकारियों की आज्ञा पालन भी आवश्यक है । क्योंकि वह या तो अल्लाह और उसके रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के आदेशों को लागू

فَرُدُّوهُ إِلَى اللَّهِ وَ الرَّسُولِ إِنْ كُنْتُمْ تُؤْمِنُونَ بِاللَّهِ وَ الْيَوْمِ الْآخِرِ ذَٰلِكَ خَيْرٌ وَ أَحْسَنُ تَأْوِيلًا ﴿٥٩﴾

बात में मतभेद करो तो उसे लौटाओ अल्लाह (तआला) तथा रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की ओर, यदि तुम्हें अल्लाह तथा क़ियामत के दिन पर ईमान है। यह सर्वश्रेष्ठ है और परिणाम अनुसार बहुत अच्छा है।[1]

करते हैं अथवा उम्मत (क़ौम अथवा समुदाय) की सामाजिक समस्याओं का समाधान तथा रक्षा करते हैं। इससे ज्ञात होता है कि राजाधिकारियों के आदेशों का पालन यद्यपि आवश्यक है, परन्तु वह पूर्ण रूप से लागू नहीं होता बल्कि प्रतिबन्धित है अल्लाह और रसूल के आज्ञापालन के साथ। इसलिए अल्लाह की आज्ञा पालन के पश्चात ही रसूल की आज्ञा पालन को तो कहा गया है। क्योंकि यह दोनों आज्ञापालन स्थाई और आवश्यक हैं। "परन्तु राजाधिकारी की आज्ञापालन करो" नहीं कहा गया है, क्योंकि राजाधिकारियों का आज्ञापालन स्थाई नहीं है। और हदीस में भी कहा गया है, «لَا طَاعَةَ لِمَخْلُوقٍ فِي مَعْصِيَةِ الْخَالِقِ»(इसे अलबानी ने हदीस सहीह कहा है मिशकात संख्या ३६९६- मुस्लिम हदीस संख्या १८४०)

और«إِنَّمَا الطَّاعَةُ فِي الْمَعْرُوفِ»(सहीह बुख़ारी किताबुल अहकाम बाब-४)

«السَّمْعُ وَالطَّاعَةُ لِلإِمَامِ مَا لَمْ تَكُنْ مَعْصِيَةً» "पाप में पालन नहीं,पालन केवल पुण्यों में है।"

यही बात आलिमों तथा धर्मशास्त्रियों के विषय में भी है (यदि अधिकारियों में इन्हें भी मान लिया जाये) अर्थात उनकी आज्ञा का पालन इसलिए करना होगा क्योंकि वह अल्लाह और उसके रसूल के आदेश तथा कथनों को जनता के समक्ष प्रस्तुत करते हैं तथा उसके धर्म की ओर संदेश तथा मार्ग दर्शन का कार्य करते हैं। इससे ज्ञात हुआ कि आलिम तथा धर्माधिकारी भी धार्मिक विषयों में अधिकारियों के समान आवश्य जनता के लिए आज्ञापालन के अधिकारी हैं। परन्तु उनकी आज्ञा का पालन भी उस समय तक किया जायेगा, जब तक वह जनता को केवल अल्लाह और उसके रसूल की बात बतायें, परन्तु यदि वह इससे मुख मोड़ लें तो जनता के लिए उनका आज्ञापालन करना भी आवश्यक नहीं है। बल्कि उनके मुख मोड़ने की स्थिति में जान-बूझकर उनका आज्ञापालन बड़ा पाप है।

[1]अल्लाह की ओर लौटाने से तात्पर्य क़ुरआन करीम तथा रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से तात्पर्य अब रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की हदीस है। यह आपसी मतभेद समाप्त करने के लिए एक सर्वश्रेष्ठ नियम बताया गया है। इस नियम से भी स्पष्ट होता है कि तीसरे व्यक्ति का आज्ञापालन आवश्यक नहीं है। जिस प्रकार से

(६०) क्या आपने उन्हें नही देखा जिसका विचार है कि जो कुछ आप पर तथा जो कुछ आप से पूर्व उतारा गया है, उस पर उनका ईमान है, परन्तु वह अपने निर्णय अल्लाह के अतिरिक्त अन्य के पास ले जाना चाहते हैं यद्यपि उन्हें आदेश दिया गया है कि वह उनका (शैतान का) इंकार करें ? शैतान तो यह चाहता है कि उन्हें भटका कर दूर डाल दे ।

أَلَمْ تَرَ إِلَى الَّذِينَ يَزْعُمُونَ أَنَّهُمْ آمَنُوا بِمَا أُنزِلَ إِلَيْكَ وَمَا أُنزِلَ مِن قَبْلِكَ يُرِيدُونَ أَن يَتَحَاكَمُوا إِلَى الطَّاغُوتِ وَقَدْ أُمِرُوا أَن يَكْفُرُوا بِهِ وَيُرِيدُ الشَّيْطَانُ أَن يُضِلَّهُمْ ضَلَالًا بَعِيدًا ﴿٦٠﴾

(६१) और उन से जब कभी कहा जाये कि अल्लाह (तआला) ने जो (पवित्र शास्त्र) उतारा है उसकी ओर तथा रसूल की ओर आओ तो आप देखेंगे कि यह मुनाफ़िक़ (अवसरवादी) आपसे मुंह फेर कर रुक जाते हैं ।[1]

وَإِذَا قِيلَ لَهُمْ تَعَالَوْا إِلَىٰ مَا أَنزَلَ اللَّهُ وَإِلَى الرَّسُولِ رَأَيْتَ الْمُنَافِقِينَ يَصُدُّونَ عَنكَ صُدُودًا ﴿٦١﴾

अनुकरणवाद अथवा एक विशेष व्यक्ति का आज्ञापालन करने पर विश्वास करने वाले एक तीसरे व्यक्ति की आज्ञापालन को उचित ठहराते हैं और इसी तीसरी आज्ञापालन-कारिता ने, जो क़ुरआन की इस आयत का स्पष्ट विरोध है मुसलमानों को एक उम्मत के विपरीत अनेक बना रखा है तथा उनकी एकता को असंभव बना दिया है ।

[1]यह आयत ऐसे लोगों के बारे में उतरी है, जो अपना निर्णय कराने के लिए मोहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के न्यायालय में ले जाने के बजाय यहूदियों के मुखिया अथवा क़ुरैश के मुखिया के पास ले जाना चाहते थे परन्तु यह आदेश जन-सामान्य के लिए है और इसमें सभी वह लोग सम्मिलित हैं जो क़ुरआन और सुन्नत के विपरीत अपने निर्णय के लिए इन दोनों को छोड़ कर अन्य की ओर जाते हैं । वरन् मुसलमान का हाल तो यह होता है कि,

﴿إِنَّمَا كَانَ قَوْلَ الْمُؤْمِنِينَ إِذَا دُعُوا إِلَى اللَّهِ وَرَسُولِهِ لِيَحْكُمَ بَيْنَهُمْ أَن يَقُولُوا سَمِعْنَا وَأَطَعْنَا﴾

"जब उन्हें अल्लाह और रसूल की ओर बुलाया जाता है ताकि उनके मध्य निर्णय कर दें, तो वह कहते हैं हमने सुना और हमने पालन किया ।" (अल-नूर ५१)

ऐसे ही लोगों के लिए अल्लाह तआला ने फ़रमाया,

"و أولئك هم المفلحون" "यही लोग सफल हैं ।"

فَكَيْفَ إِذَآ أَصَٰبَتْهُم مُّصِيبَةٌۢ بِمَا قَدَّمَتْ أَيْدِيهِمْ ثُمَّ جَآءُوكَ يَحْلِفُونَ بِٱللَّهِ إِنْ أَرَدْنَآ إِلَّآ إِحْسَٰنًا وَتَوْفِيقًا ﴿٦٢﴾

(६२) फिर क्या कारण है कि जब उन पर उनके कर्मों के कारण कोई आपत्ति आ पड़ती है, तो फिर यह आपके पास आकर अल्लाह (तआला) की शपथ लेते हैं कि हमारा विचार तो केवल भलाई तथा मधुर सम्बन्ध ही का था।[1]

أُو۟لَٰٓئِكَ ٱلَّذِينَ يَعْلَمُ ٱللَّهُ مَا فِى قُلُوبِهِمْ فَأَعْرِضْ عَنْهُمْ وَعِظْهُمْ وَقُل لَّهُمْ فِىٓ أَنفُسِهِمْ قَوْلًۢا بَلِيغًا ﴿٦٣﴾

(६३) यह वह लोग हैं जिनके दिलों का भेद अल्लाह (तआला) को भली-भाँति स्पष्ट है, आप उनसे अनसुनी कीजिये, तथा उन्हें शिक्षा देते रहिए एवं उन्हें वह बात कहिए जो उनके दिलों में घर करने वाली हो।[2]

وَمَآ أَرْسَلْنَا مِن رَّسُولٍ إِلَّا لِيُطَاعَ بِإِذْنِ ٱللَّهِ ۚ وَلَوْ أَنَّهُمْ إِذ ظَّلَمُوٓا۟ أَنفُسَهُمْ جَآءُوكَ فَٱسْتَغْفَرُوا۟ ٱللَّهَ وَٱسْتَغْفَرَ لَهُمُ

(६४) और हमने प्रत्येक रसूल को केवल इसीलिए भेजा कि अल्लाह (तआला) के आदेश से उसकी आज्ञा का पालन किया जाये और यदि यह लोग जब उन्होंने अपने प्राणों पर अत्याचार किया तेरे पास आ जाते, और अल्लाह (तआला) से क्षमा-याचना करते और

---

[1]अर्थात जब अपने इस करतूत के कारण अल्लाह की यातना के शिकार बन कर विपदा में फंसते हैं, तो फिर आकर यह कहते हैं कि किसी अन्य स्थान पर जाने का उद्देश्य यह नहीं था कि हम वहाँ से निर्णय करायें अथवा आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से अधिक न्याय मिलेगा, बल्कि हमारा उद्देश्य तो संधि तथा मिलाप कराना था।

[2]अल्लाह तआला ने फ़रमाया कि यद्यपि हम उनके दिलों के सभी भेदों से अवगत हैं (जिनका फल हम उन्हें देंगे) परन्तु हे पैगम्बर! आप उनके प्रत्यक्ष को सामने रखते हुए क्षमा ही कीजिए और शिक्षा-दीक्षा तथा ऐसी बातें कहिए जो उनके दिलों में घर कर लें, और इससे उनके अन्दर के सुधार का प्रयत्न निरन्तर करते रहें। इससे ज्ञात हुआ कि शत्रु के षडयन्त्रों को क्षमा तथा अनसुनी करके शिक्षा-दीक्षा तथा हृदय स्पर्शी भाषण के द्वारा ही निष्काम बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

रसूल भी उनके लिए क्षमा-याचना करते,[1] तो नि:संदेह यह लोग अल्लाह तआला को क्षमा करने वाला कृपालु पाते ।

الرَّسُولُ لَوَجَدُوا اللَّهَ تَوَّابًا رَّحِيمًا

(६५) तो सौगन्ध है तेरे प्रभु की ! यह (तब तक) ईमानवाले नहीं हो सकते जब तक कि सभी आपस के मतभेद में आपको न्यायिक न स्वीकार कर लें, फिर जो निर्णय आप कर दें उनसे अपने दिलों में तनिक भी कलुपता तथा अप्रसन्नता न पायें और आज्ञाकारी के भांति स्वीकार कर लें ।[2]

فَلَا وَرَبِّكَ لَا يُؤْمِنُونَ حَتَّىٰ يُحَكِّمُوكَ فِيمَا شَجَرَ بَيْنَهُمْ ثُمَّ لَا يَجِدُوا فِي أَنفُسِهِمْ حَرَجًا مِّمَّا قَضَيْتَ وَيُسَلِّمُوا تَسْلِيمًا

---

[1]मोक्ष के लिए अल्लाह तआला के सदन में क्षमा-याचना करना आवश्यक एवं पर्याप्त है । परन्तु यहाँ पर कहा गया है कि हे पैग़म्बर ! वह तेरे पास आते और अल्लाह से क्षमा-याचना करते और तू भी उनके के लिए क्षमा-याचना करता । यह इसलिए कि उन्होंने अपने मतभेदों के निर्णय के लिए दूसरों के पास जाकर आपकी अवहेलना की थी । इसलिए उसके निवारण के लिए आपके पास आने के लिए विशेष बल दिया गया ।

[2]इस आयत के उतरने के विषय में एक यहूदी और मुसलमान की घटना का सामान्यत: वर्णन होता है, जो अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के सदन में निर्णय के उपरान्त आदरणीय उमर (رضي الله عنه) से निर्णय करवाने गया, जिस पर आदरणीय उमर (رضي الله عنه) ने उस मुसलमान का सिर धड़ से अलग कर दिया । परन्तु यह वाक्य प्रमाणयुक्त नहीं है जैसा कि हाफ़िज इब्ने कसीर ने भी स्पष्ट किया है । सही घटना यह है जो इस आयत के उतरने का कारण है कि आदरणीय ज़ुबैर (رضي الله عنه) जो रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की फूफी के पुत्र थे, और एक आदमी के खेत की सिंचाई करने के लिए नाली के पानी पर झगड़ा था । यह विवाद नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम तक पहुँचा, आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने विवाद के घटना स्थल का निरीक्षण किया, न्याय के अनुसार निर्णय आदरणीय ज़ुबैर (رضي الله عنه) के पक्ष में हुआ, जिस पर दूसरे आदमी ने यह कहा कि आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने यह निर्णय इसलिए किया है कि वह आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के फूफी के पुत्र हैं । इस पर यह आयत उतरी । (सहीह बुख़ारी तफ़सीर सूर: *अल-निसा*) आयत का अर्थ यह हुआ कि नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की किसी बात अथवा निर्णय का विरोध तो अलग दिल में संकीर्णता भी ईमान के विपरीत है । यह आयत भी हदीस के इंकार करने वालों के लिए है ही, अन्य लोगों के लिये भी विचारणीय है, जो इमाम के कथन के

(६६) और यदि हम उन पर यह अनिवार्य कर देते कि अपने आप की हत्या कर लो अथवा अपने घरों से निकल जाओ, तो उसे उनमें से वहुत ही कम लोग पालन करते। और यदि यह वही करें जिसकी उन्हें शिक्षा दी जाती है, तो अवश्य ही उनके लिए श्रेष्ठकर हो और अत्यधिक सुदृढ़ हो।[1]

وَلَوْ اَنَّا كَتَبْنَا عَلَيْهِمْ اَنِ اقْتُلُوْٓا اَنْفُسَكُمْ اَوِاخْرُجُوْا مِنْ دِيَارِكُمْ مَّا فَعَلُوْهُ اِلَّا قَلِيْلٌ مِّنْهُمْ ۭ وَلَوْ اَنَّهُمْ فَعَلُوْا مَا يُوْعَظُوْنَ بِهٖ لَكَانَ خَيْرًا لَّهُمْ وَاَشَدَّ تَثْبِيْتًا ۙ﴿٦٦﴾

(६७) और तव तो हम उन्हें अपने पास से वहुत पुण्य प्रदान करें।

وَّاِذًا لَّاٰتَيْنٰهُمْ مِّنْ لَّدُنَّآ اَجْرًا عَظِيْمًا ۙ﴿٦٧﴾

(६८) और निःसंदेह उन्हें सत्य मार्गदर्शन प्रदान कर दें।

وَّلَهَدَيْنٰهُمْ صِرَاطًا مُّسْتَقِيْمًا ﴿٦٨﴾

(६९) और जो भी अल्लाह (तआला) तथा रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की आज्ञा का पालन करे, वह उन लोगों के साथ होगा, जिन पर अल्लाह (तआला) ने अपनी कृपा की है, जैसे नवियों और सत्यवादियों तथा शहीदों एवं

وَمَنْ يُّطِعِ اللّٰهَ وَالرَّسُوْلَ فَاُولٰۗىِٕكَ مَعَ الَّذِيْنَ اَنْعَمَ اللّٰهُ عَلَيْهِمْ مِّنَ النَّبِيّٖنَ وَالصِّدِّيْقِيْنَ وَالشُّهَدَاۗءِ وَالصّٰلِحِيْنَ ۚ وَحَسُنَ اُولٰۗىِٕكَ رَفِيْقًا ﴿٦٩﴾

सापेक्ष सहीह हदीस को मानने से संकुचित ही नहीं होते, अपितु वह स्पष्ट शब्दों में उसे मानने से इंकार करते हैं अथवा उसके कहने वालों की मान्य श्रृंखला को अथवा अन्य कुछ कारणों को वता कर अनुचित रुप से उसे असत्य कथन सिद्ध करते हैं।

[1]आयत में उन्हीं अवज्ञाकारी लोगों के दुर्व्यवहार की ओर संकेत करके कहा जा रहा है कि यदि उन्हें आदेश दिया जाता कि एक-दूसरे की हत्या करो अथवा अपने घरों से निकल जाओ तो जव यह सरल से सरल वातों का पालन नहीं कर सके, तो इस के अनुसार कैसे कर्म कर सकते थे? यह अल्लाह तआला ने अपने ज्ञान से उनके विषय में वताया है जो निःसंदेह घटनाओं के अनुसार है। तात्पर्य यह है कि कठोर आदेशों का पालन तो निश्चय कठिन है, परन्तु अल्लाह तआला अति दयालु तथा अति कृपालु है, उसके आदेश भी सरल हैं। इसलिए यदि यह इन आदेशों पर चलें जिनकी उन्हें शिक्षा दी जा रही है, तो यह उनके लिए श्रेष्ठता तथा स्थिरता का हेतु हो, क्योंकि ईमान आज्ञापालन से वढ़ता है और पाप से घटता है। पुण्य से पुण्य का मार्ग खुलता है और पाप से पाप जन्म लेता है।

पुण्य सदाचारियों के (साथ), यह अच्छे साथी हैं ।[1]

(७०) यह अल्लाह (तआला) की ओर से कृपा है और अल्लाह (तआला) ही पर्याप्त जानकार है ।

ذَٰلِكَ الْفَضْلُ مِنَ اللَّهِ ۚ وَكَفَىٰ بِاللَّهِ عَلِيمًا

---

[1]अल्लाह और रसूल के आज्ञापालन का प्रतिकार बताया जा रहा है । इसलिए हदीस में आता है, «الْمَرْءُ مَعَ مَنْ أَحَبَّ» (सहीह बुखारी किताबुल आदाब, बाब संख्या ९७ अलामतु हुब्बिल्लाह अज़्ज व जल्ल, मुस्लिम किताबुल बिर्र वल सिल:वल आदाब, बाब अल-मरउ मन अहब्ब, हदीस संख्या १६४०) "आदमी उसी के साथ होगा, जिनसे उसको प्रेम होगा ।" आदरणीय अनस (رضي الله عنه) फरमाते हैं "सहाबा को इतनी प्रसन्नता रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के इस कथन को सुनकर हुई, कि इतनी प्रसन्नता कभी नहीं हुई ।" क्योंकि वह स्वर्ग में भी रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का साथ चाहते थे । इसके उतरने की विशेषता का कथन इस प्रकार है कि कुछ सहाबा ने नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की सेवा में कहा कि अल्लाह तआला आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को स्वर्ग में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्रदान करेगा और हमें उससे नीचा स्थान ही मिलेगा और इस प्रकार हम आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के साथ तथा निकटता एवं दर्शन से वंचित रहेंगे, जो हमें दुनिया में प्राप्त है । अत: अल्लाह तआला ने यह आयत उतार कर उनके दिल को सन्तोष प्रदान किया । (इब्ने कसीर) कुछ सहाबा ने विशेष रूप से नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से स्वर्ग में साथ होने की प्रार्थना की «أَسْأَلُكَ مُرَافَقَتَكَ فِي الْجَنَّةِ» जिस पर नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने उन्हें अधिकता से ऐच्छिक (नफ़िल) नमाज़ पढ़ने पर बल दिया «فَأَعِنِّي عَلَىٰ نَفْسِكَ بِكَثْرَةِ السُّجُودِ» (सहीह मुस्लिम, किताबुल सलात, बाब फ़ज़लिस्सुजूद वल हस्से अलैहि, हदीस संख्या ४८८) "बस, तुम सजदों की अधिकता से मेरी सहायता करो ।" इसके अतिरिक्त एक अन्य हदीस है ।

«التَّاجِرُ الصَّدُوقُ الأَمِينُ مَعَ النَّبِيِّينَ وَالصِّدِّيقِينَ وَالشُّهَدَاءِ»

"उचित सत्यवादी ईमानदार व्यापारी नबियों सत्यवादियों तथा शहीदों के साथ होगें ।" (त्रिमिज किताबुल बुयुअ)

सिद्दीक़ियत पूर्ण विश्वास तथा सम्पूर्ण आज्ञापालन का नाम है, नबूवत के पश्चात इस का स्थान है । मुसलमानों में उस स्थान के लिए आदरणीय अबूबक्र सिद्दीक सर्वश्रेष्ठ हैं और इसीलिए सर्वसम्मति से नबियों के अतिरिक्त उनका नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के पश्चात सर्वश्रेष्ठ स्थान है । सत्यकर्मी वह है जो अल्लाह के अधिकार और व्यक्तियों के अधिकार पूर्ण रूप से अदा करे और उन में आलस्य न करे ।

يَٰٓأَيُّهَا الَّذِينَ اٰمَنُوا خُذُوا حِذْرَكُمْ فَانْفِرُوا ثُبَاتٍ اَوِ انْفِرُوا جَمِيْعًا ﴿٧١﴾

(७१) हे मुसलमानो ! अपनी रक्षा सामग्री ले लो,[1] फिर गिरोह-गिरोह बनकर प्रस्थान करो अथवा सब के सब एक साथ प्रस्थान करो।

وَاِنَّ مِنْكُمْ لَمَنْ لَّيُبَطِّئَنَّ ۚ فَاِنْ اَصَابَتْكُمْ مُّصِيْبَةٌ قَالَ قَدْ اَنْعَمَ اللّٰهُ عَلَيَّ اِذْ لَمْ اَكُنْ مَّعَهُمْ شَهِيْدًا ﴿٧٢﴾

(७२) और निःसंदेह तुम में कुछ ऐसे भी हैं जो संकोच करते हैं।[2] फिर यदि तुम्हें कोई हानि होती है तो कहते हैं कि अल्लाह (तआला) ने मुझ पर बड़ी कृपा की कि मैं उनके साथ उपस्थित नहीं था।

وَلَئِنْ اَصَابَكُمْ فَضْلٌ مِّنَ اللّٰهِ لَيَقُوْلَنَّ كَاَنْ لَّمْ تَكُنْ ۢ بَيْنَكُمْ وَبَيْنَهٗ مَوَدَّةٌ يّٰلَيْتَنِيْ كُنْتُ مَعَهُمْ فَاَفُوْزَ فَوْزًا عَظِيْمًا ﴿٧٣﴾

(७३) और यदि तुम को अल्लाह (तआला) की कोई कृपा प्राप्त हो जाये[3] तो जैसे कि तुम में और उन में संबन्ध था ही नहीं[4] कहते हैं कि काश ! मैं भी उनके साथ होता तो बड़ी सफलता को पहुँच जाता।[5]

فَلْيُقَاتِلْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ الَّذِيْنَ يَشْرُوْنَ الْحَيٰوةَ الدُّنْيَا بِالْاٰخِرَةِ ؕ

(७४) परन्तु जो लोग दुनिया का जीवन परलोक (आख़िरत) के बदले बेच चुके हैं,[6] उन्हें अल्लाह

---

[1]अपना बचाव करो, अस्त्र-शस्त्र तथा युद्ध की सामग्री और अन्य साधन से।

[2]यह अवसरवादियों का वर्णन है। संकोच का अर्थ धर्मयुद्ध में जाने से कतराते और पीछे रह जाते हैं।

[3]अर्थात युद्ध में विजय, प्रभावशाली तथा प्राप्त सामान।

[4]अर्थात मानो वे तुम्हारे धर्म के लोगों में से है ही नहीं, अपितु अन्य हैं।

[5]अर्थात युद्ध से प्राप्त सामग्री में भागीदार होता जो स्वार्थ साधकों का सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य है।

[6]شرى يشـــري के अर्थ बेचने के भी आते हैं और ख़रीदने के भी। मूल में पहले अनुवाद को लिया गया है। इस आधार पर فليقاتل का कर्त्ता الذين يشرون الحيٰوة होगा, परन्तु इसका अर्थ ख़रीदने के लिये जायें तो इस अवस्था में الذين कर्म कारक बनेगा और فليقـــاتل का कर्त्ता المؤمن النافر (धर्मयुद्ध में प्रस्थान करने वाले मुसलमान) लुप्त होगा। अर्थ यह होगा कि “मुसलमान उन लोगों से लड़ें जिन्होंने परलोक (आख़िरत) बेच कर

وَمَنْ يُّقَاتِلْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ فَيُقْتَلْ اَوْ يَغْلِبْ فَسَوْفَ نُؤْتِيْهِ اَجْرًا عَظِيْمًا ۝

(तआला) के मार्ग में धर्मयुद्ध करना चाहिए और जो अल्लाह (तआला) के मार्ग में धर्म युद्ध करते हुए शहीद हो जाये अथवा विजयी हो जाये तो, नि:संदेह हम उसे सर्वश्रेष्ठ प्रतिफल प्रदान करेंगे।

وَمَا لَكُمْ لَا تُقَاتِلُوْنَ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَالْمُسْتَضْعَفِيْنَ مِنَ الرِّجَالِ وَالنِّسَآءِ وَالْوِلْدَانِ الَّذِيْنَ يَقُوْلُوْنَ رَبَّنَآ اَخْرِجْنَا مِنْ هٰذِهِ الْقَرْيَةِ الظَّالِمِ اَهْلُهَا وَاجْعَلْ لَّنَا مِنْ لَّدُنْكَ وَلِيًّا وَّاجْعَلْ لَّنَا مِنْ لَّدُنْكَ نَصِيْرًا ۝

(७५) भला क्या कारण है कि तुम अल्लाह के मार्ग में और उन शक्तिहीन पुरुषों, स्त्रियों तथा नन्हे-नन्हे बच्चों के छुटकारे के लिए धर्मयुद्ध न करो ? जो इस प्रकार से प्रार्थना कर रहे हैं कि हे हमारे प्रभु ! इन अत्याचारियों की बस्ती से हमें निकाल दे और हमारे लिए स्वयं अपने पास से पक्षधर निर्धारित कर और हमारे लिए विशेष रूप से अपने पास से सहायक बना।[1]

اَلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا يُقَاتِلُوْنَ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ

(७६) जो लोग ईमान लाये हैं, वह तो अल्लाह (तआला) के मार्ग में धर्मयुद्ध करते हैं और जिन

दुनिया ख़रीद ली।" अर्थात जिन्होंने दुनिया के थोड़े से धन के लोभ में अपने धर्म को बेच डाला। तात्पर्य अवसरवदी तथा काफ़िर होंगे। (इब्ने कसीर ने इसी भावार्थ का वर्णन किया है)

[1]अत्याचारियों की बस्ती से (आयत के उतरने के आधार पर) तात्पर्य मक्का है। हिजरत के बाद वहाँ शेष रह जाने वाले मुसलमान विशेषरूप से वृद्ध पुरूष, स्त्री, और बच्चे काफ़िरों के अत्याचार से तंग आकर अल्लाह के दरबार में सहायता की दुआ करते थे। अल्लाह तआला ने मुसलमानों को चेतावनी दी कि तुम مستضعفين (उपरोक्त वर्णित कमजोर व्यक्तियों) को काफ़िरों से मुक्त कराने के लिए धर्मयुद्ध क्यों नहीं करते ? इस आयत से भाव निकालकर विद्वानों ने कहा है कि जिस क्षेत्र में भी मुसलमान काफ़िरों के अत्याचारों के शिकार हो रहे हों तो दूसरे मुसलमानों को अनिवार्य है कि काफ़िरों के अत्याचार से मुक्त कराने के लिए धर्मयुद्ध करें। यह धर्मयुद्ध का दूसरा रूप है पहला रूप अल्लाह के आदेश अर्थात उसके धर्म के प्रचार-प्रसार तथा अल्लाह तआला के आदेशों के प्रभाव के लिए लड़ना, जिसका वर्णन इससे पहली आयत तथा आगामी आयत में है।

وَالَّذِينَ كَفَرُوا يُقَاتِلُونَ فِي سَبِيلِ الطَّاغُوتِ فَقَاتِلُوا أَوْلِيَاءَ الشَّيْطَانِ ۖ إِنَّ كَيْدَ الشَّيْطَانِ كَانَ ضَعِيفًا ﴿٧٦﴾

लोगों ने कुफ़्र किया है वह तो राक्षस के मार्ग में लड़ते हैं[1] बस, तुम शैतान के मित्रों से युद्ध करो, विश्वास करो कि शैतान की चाल (बिल्कुल क्षीण तथा) अत्यधिक शक्तिहीन है।[2]

أَلَمْ تَرَ إِلَى الَّذِينَ قِيلَ لَهُمْ كُفُّوا أَيْدِيَكُمْ وَأَقِيمُوا الصَّلَاةَ وَآتُوا الزَّكَاةَ فَلَمَّا كُتِبَ عَلَيْهِمُ الْقِتَالُ إِذَا فَرِيقٌ مِّنْهُمْ يَخْشَوْنَ النَّاسَ كَخَشْيَةِ اللَّهِ أَوْ أَشَدَّ خَشْيَةً ۚ وَقَالُوا رَبَّنَا لِمَ كَتَبْتَ عَلَيْنَا الْقِتَالَ لَوْلَا أَخَّرْتَنَا إِلَىٰ

(७७) क्या तुम ने उन्हें नहीं देखा जिन्हें आदेश दिया गया कि अपने हाथों को रोके रखो और नमाज़ें पढ़ते रहो और ज़कात अदा करते रहो। फिर जब उन्हें धर्म युद्ध का आदेश दिया गया, तो उसी समय उनका एक गिरोह लोगों से इस प्रकार भयभीत था, जैसे अल्लाह (तआला) का भय हो, बल्कि इससे भी अधिक। और कहने लगे, हे हमारे प्रभु ! तूने हम पर धर्मयुद्ध क्यों अनिवार्य किया ?[3] क्यों हमें थोड़ा जीवन

[1]मुसलमान और काफ़िर दोनों को युद्ध की आवश्यकता होती है। परन्तु दोनों के युद्ध के उद्देश्य में बड़ा अन्तर है। मुसलमान अल्लाह के लिए लड़ता है, मात्र दुनिया अथवा राज्य विस्तार के लिए नहीं। जब कि काफ़िर का उद्देश्य यही दुनिया और उसके लाभ होते हैं।

[2]मुसलमानों को प्रलोभन दिया गया है कि शैतानी उद्देश्यों के लिए बहाने तथा चाल क्षीण होते हैं, प्रत्यक्ष साधनों के पराचुर्य एवं अधिक संख्या से न डरो तुम्हारा विश्वास बल तथा तुम्हारे धर्म युद्ध के संकल्प के आगे शैतान के शिष्य नही ठहर सकते।

[3]मक्के में मुसलमान चूँकि संख्या तथा संसाधन की कमी के कारण लड़ने योग्य नहीं थे। इसलिए उनकी इच्छा के विपरीत उन्हें युद्ध से रोके रखा गया। और दो बातों पर बल दिया जाता रहा, एक यह कि काफ़िरों के अत्याचार को धैर्य तथा साहस से सहन करें और क्षमा तथा सहिष्णुता से ही काम लें। दूसरे यह कि नमाज़, ज़कात तथा अन्य अर्चना तथा शिक्षाओं के अनुरूप कार्य करें ताकि अल्लाह तआला से सम्बन्ध दृढ़ आधारों पर स्थित हो। परन्तु हिजरत के बाद मदीने में जब मुसलमानों की शक्ति एकत्रित हो गयी तो फिर उन्हें लड़ने की अनुमति दी गयी। और जब अनुमति दे दी गयी, तो कुछ लोगों ने निर्बलता तथा साहस विहीनता का प्रदर्शन किया। इस आयत में मक्के के समय में उनकी आकांक्षाओं को याद दिलाकर कहा जा रहा है कि अब यह

और न व्यतीत करने दिया ?[1] आप कह दीजिए कि दुनिया का लाभ तो बहुत कम है और परहेज़गारों के लिए आख़िरत (परलोक) श्रेष्ठ है, और तुम एक धागे के समान भी अत्याचार न किये जाओगे।

أَجَلٍ قَرِيبٍ ۗ قُلْ مَتَاعُ الدُّنْيَا قَلِيلٌ وَالْآخِرَةُ خَيْرٌ لِّمَنِ اتَّقَىٰ وَلَا تُظْلَمُونَ فَتِيلًا ۝

(७८) तुम जहाँ कहीं भी होगे मृत्यु तुम्हें आ पकड़ेगी, चाहे तुम सुदृढ़ दुर्गों में हो।[2] और

أَيْنَ مَا تَكُونُوا يُدْرِككُّمُ الْمَوْتُ وَلَوْ كُنتُمْ فِي بُرُوجٍ مُّشَيَّدَةٍ ۗ وَإِن

मुसलमान धर्म युद्ध का आदेश सुन कर भयभीत क्यों हो रहे हैं ? जबकि यह धर्मयुद्ध तो स्वयं उनकी कामना के अनुरूप है।

क़ुरआन की आयत बदलना : आयत का पहला भाग जिसमें लड़ाई से हाथ रोके रखने का आदेश है इससे कुछ लोगों ने यह भाव निकाला है कि नमाज़ में रूकुअ में जाते और रूकुअ से उठते समय हाथों को कानों तक नहीं उठाना चाहिए (जिसे रफ़उल यदैन कहते हैं) क्योंकि अल्लाह तआला ने क़ुरआन करीम में नमाज़ की अवस्था में हाथों को रोके रखने का आदेश दिया है यह एक अनुचित और बेकार तर्क है। इसके लिए उन साहब ने आयत के शब्दों को भी बदला है और अर्थ भी। अर्थात शाब्दिक एवं भावार्थ दोनों में परिवर्तन कर डाला है।

[1]इसका दूसरा अनुवाद यह भी किया गया है कि इस धर्मयुद्ध के आदेश को कुछ समय के लिए स्थगित क्यों न कर दिया ? अर्थात أجل قريب से तात्पर्य मृत्यु अथवा धर्मयुद्ध का समय है। (तफ़सीर इब्ने कसीर)

[2]ऐसे कमज़ोर मुसलमानों को समझाने के लिए कहा जा रहा है कि यह दुनिया क्षणभंगुर है तथा इसका लाभ अस्थाई है, जिसके लिए तुम समय माँग रहे हो। जिसकी अपेक्षा परलोक (आख़िरत) सर्वश्रेष्ठ है, जिसको तुम अल्लाह तआला के आज्ञाकारी हो कर प्राप्त कर सकोगे। दूसरे यह कि तुम धर्मयुद्ध करो अथवा न करो मृत्यु तो अपने समय पर आकर ही रहेगी, चाहे तुम सुदृढ़ दुर्गों में ही जाकर क्यों न छुप जाओ। फिर धर्म युद्ध से जान बचाने का क्या लाभ ? "सुदृढ़ दुर्गों" से तात्पर्य सुदृढ़ तथा उच्च दीवारों से घिरे दुर्ग हैं।

टिप्पणी : कुछ मुसलमानों को प्राकृतिक रूप से यह भय था। इसी प्रकार विलम्ब करने की कामना भी आपत्ति अथवा इंकार के लिए न था, बल्कि प्राकृतिक भय का एक तार्किक परिणाम था। इसलिए अल्लाह तआला ने उसे क्षमा कर दिया और अत्यधिक सुदृढ़ तर्क से उन्हें सहारा तथा साहस दिया।

يَّصِبُهُمْ حَسَنَةٌ يَقُولُوا هٰذِهٖ مِنْ عِنْدِ اللّٰهِ ۚ وَاِنْ تُصِبْهُمْ سَيِّئَةٌ يَقُولُوا هٰذِهٖ مِنْ عِنْدِكَ ۭ قُلْ كُلٌّ مِّنْ عِنْدِ اللّٰهِ ۭ فَمَالِ هٰٓؤُلَاۗءِ الْقَوْمِ لَا يَكَادُوْنَ يَفْقَهُوْنَ حَدِيْثًا ۝

यदि इन्हें कोई भलाई मिलती है तो कहते हैं कि यह अल्लाह (तआला) की ओर से है और यदि कोई बुराई पहुँचती है, तो कह उठते हैं कि यह तेरी ओर से है ।[1] उन्हें कह दो, यह सब कुछ अल्लाह (तआला) की ओर से हैं । उन्हें क्या हो गया है कि कोई बात समझने के निकट भी नहीं ?[2]

مَآ اَصَابَكَ مِنْ حَسَنَةٍ فَمِنَ اللّٰهِ ۡ وَمَآ اَصَابَكَ مِنْ سَيِّئَةٍ فَمِنْ

(७९) तुझे जो भलाई मिलती है वह अल्लाह (तआला) की ओर से है ।[3] और जो बुराई

---

[1]यहाँ से पुनः अवसरवादियों की बातों का वर्णन हो रहा है । विगत समुदाय के अवसरवादियों की भाँति इन्होंने भी कहा कि भलाई (सम्पन्नता, अन्न की उपज, धन तथा सन्तान की अधिकता आदि) अल्लाह की ओर से है और बुराई (सूखा, धन-धान्य में कमी आदि) हे मोहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) तेरी ओर से अर्थात तेरा धर्म स्वीकार करने के कारण यह विपदा आयी है । जिस प्रकार से (आदरणीय) मूसा अलैहिस्सलाम और फ़िरऔन के अनुयायियों के विषय में अल्लाह तआला ने फ़रमाया है, "जब उनको कोई भलाई पहुँचती है तो कहते हैं, यह हमारे लिए है (हम इसके पात्र हैं) और जब उनको बुराई पहुँचती है, तो (आदरणीय) मूसा और उनके अनुयायियों से अपशगुन लेते हैं ।" (अर्थात अल्लाह की शरण, अशुभ का कारण उन्हीं को बताते हैं) (*अल-आराफ़-*१३१)

[2]अर्थात शुभ-अशुभ दोनों अल्लाह कीं ओर से है । परन्तु यह ज्ञान की कमी तथा मुर्खता के कारण इस बात को नहीं समझ पाते ।

[3]अर्थात मात्र उसकी कृपा एवं दया से है । अर्थात किसी पुण्य अथवा आज्ञा पालन का प्रतिफल नहीं है । क्योंकि पुण्य का सामर्थ्य भी अल्लाह तआला ही देता है । इसके अतिरिक्त उसकी कृपा इतनी असीम है कि एक मनुष्य की वंदना तथा आज्ञा पालन उसकी अपेक्षा कोई मूल्य नहीं रखता है । इसलिए नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया, "स्वर्ग में जो भी जायेगा, मात्र अल्लाह की कृपा से जायेगा (अपने कर्मों के कारण नहीं) ।" सहचरों ने कहा, "हे, रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम और आप भी अल्लाह की कृपा के बिना स्वर्ग में नहीं जायेगें ?" आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया कि हाँ, जब तक अल्लाह तआला मुझे भी अपनी कृपा की छाया में नही ढाँक लेगा स्वर्ग में नहीं जाऊंगा । (सहीह बुख़ारी किताबुल रिक़ाक़ अध्याय संख्या १८)

نَفْسِكَ ۚ وَأَرْسَلْنَاكَ لِلنَّاسِ رَسُولًا ۚ وَكَفَىٰ بِاللَّهِ شَهِيدًا ﴿٧٩﴾

पहुँचती है वह तेरे अपने स्वयं की ओर से है।[1] हमने तुझे मानव जाति के लिए सन्देश-वाहक बनाकर भेजा है तथा अल्लाह (तआला) पर्याप्त साक्षी है।

مَّن يُطِعِ الرَّسُولَ فَقَدْ أَطَاعَ اللَّهَ ۖ وَمَن تَوَلَّىٰ فَمَا أَرْسَلْنَاكَ عَلَيْهِمْ حَفِيظًا ﴿٨٠﴾

(८०) इस रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का जो अनुसरण करे उसी ने अल्लाह (तआला) की आज्ञाकारिता की और जो मुँह फेर ले तो हमने आपको कोई उन पर रक्षक बना कर नहीं भेजा।

وَيَقُولُونَ طَاعَةٌ فَإِذَا بَرَزُوا مِنْ عِندِكَ بَيَّتَ طَائِفَةٌ مِّنْهُمْ غَيْرَ الَّذِي تَقُولُ ۖ وَاللَّهُ يَكْتُبُ مَا يُبَيِّتُونَ ۖ فَأَعْرِضْ عَنْهُمْ وَتَوَكَّلْ عَلَى اللَّهِ ۚ وَكَفَىٰ بِاللَّهِ وَكِيلًا ﴿٨١﴾

(८१) और यह कहते तो हैं कि अनुकरण है, फिर जब आपके पास से उठ कर बाहर निकलते हैं, तो उनमें का एक गुट जो बात आपने अथवा उसने कही है उसके विपरीत रातों को विचार-विमर्श करता है।[2] उनकी रातों की बातचीत अल्लाह (तआला) लिख रहा है। आप उनसे मुँह फेर लें और अल्लाह

---

[1]यह बुराई भी यद्यपि अल्लाह की इच्छा से ही आती है। जैसा कि 'प्रत्येक विषय अल्लाह की ओर से है' से स्पष्ट होता है, परन्तु यह बुराई किसी पाप के परिणाम स्वरूप होती है। इसलिए फ़रमाया कि यह तुम्हारी अपनी स्वयं की करनी है अर्थात तुम्हारी ग़लतियों, आलस्य तथा पाप का परिणाम है। जिस प्रकार फ़रमाया :

﴿وَمَا أَصَابَكُم مِّن مُّصِيبَةٍ فَبِمَا كَسَبَتْ أَيْدِيكُمْ وَيَعْفُو عَن كَثِيرٍ﴾

"तुम्हें जो कठनाई पहुँचती है, वह तुम्हारे अपने कर्मों का फल है और बहुत से पाप तो क्षमा ही कर देता है।"(*अश्शूरा-३०*)

[2]यह अवसरवादी आप के पास जो बातें व्यक्त करते हैं, रातों को इसके विपरीत बातें करते हैं और षड़यन्त्र रचा करते हैं। आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम उनसे बचें और अल्लाह पर भरोसा करें। इनके षड़यन्त्र आप को हानि नहीं पहुँचा सकते क्योंकि आपका संरक्षक तथा कामों को बनाने वाला अल्लाह है।

तआला पर भरोसा रखें, अल्लाह तआला पर्याप्त व्यवस्थापक है।

(८२) क्या यह लोग क़ुरआन पर विचार नहीं करते ? यदि यह अल्लाह (तआला) के अतिरिक्त किसी अन्य की ओर से होता तो अवश्य इस में बहुत कुछ विभिन्नता पाते ।[1]

أَفَلَا يَتَدَبَّرُونَ الْقُرْآنَ ۚ وَلَوْ كَانَ مِنْ عِندِ غَيْرِ اللَّهِ لَوَجَدُوا فِيهِ اخْتِلَافًا كَثِيرًا ﴿٨٢﴾

(८३) और जहाँ उनको कोई सूचना शांति अथवा भय की मिली कि उन्होंने उसका प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया, यद्यपि ये लोग उसे रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के तथा अपने में से ऐसी बातों के स्रोत तक पहुचने वालों के हवाले कर देते, तो इस की वास्तविकता वह लोग ज्ञात कर लेते जो

وَإِذَا جَاءَهُمْ أَمْرٌ مِّنَ الْأَمْنِ أَوِ الْخَوْفِ أَذَاعُوا بِهِ ۖ وَلَوْ رَدُّوهُ إِلَى الرَّسُولِ وَإِلَىٰ أُولِي الْأَمْرِ مِنْهُمْ لَعَلِمَهُ الَّذِينَ يَسْتَنبِطُونَهُ مِنْهُمْ ۗ وَلَوْلَا فَضْلُ اللَّهِ عَلَيْكُمْ

---

[1]क़ुरआन करीम से मार्गदर्शन ग्रहण करने के लिए उसमें विचार करने पर बल दिया जा रहा है और उसकी सत्यता जाँचने के लिए एक स्तर भी बताया जा रहा है कि यदि यह किसी पुरुष द्वारा लिखित होता (जैसा कि काफ़िरों का विचार है) तो इसके विषय तथा वर्णित घटनाओं में टकराव तथा मतभेद होता। क्योंकि यह एक छोटी पुस्तक नहीं है । एक स्थूल तथा विस्तृत किताब है, जिसका प्रत्येक भाग चमत्कार तथा साहित्य में अनुपम है । जबकि मानव द्वारा रचित स्थूल पुस्तक में भाषा का स्तर और उसकी कोमलता तथा सरलता स्थिर नहीं रहती। दूसरे इसमें पूर्व के समुदायों की घटनाओं का वर्णन है, जिसे केवल अल्लाह परोक्षज्ञ के अतिरिक्त अन्य कोई भी वर्णन नहीं कर सकता। तीसरे इनके बयान तथा कथाओं में न आपसी विभेद है और न उनका छोटे से छोटा अंश भी क़ुरआन की किसी वास्तविकता से टकराता है। यदि एक मनुष्य विगत की घटनाओं का वर्णन करे तो उसकी श्रृंखला की कड़ियाँ टूट जाती हैं और उनके विवरण में विपरीतता उत्पन्न हो ही जाती है। क़ुरआन करीम के इन सभी मानवी दोषों से स्वच्छ होने का स्पष्ट अर्थ यह है कि यह वास्तव में अल्लाह का कथन है, जो उसके फ़रिश्तों द्वारा अपने अन्तिम संदेशवाहक परम आदरणीय मोहम्मद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम पर उतारा।

وَرَحْمَتُهُ لَاتَّبَعْتُمُ الشَّيْطٰنَ إِلَّا قَلِيلًا ﴿٨٣﴾

अनुसंधान की बुद्धि रखते हैं ।[1] और यदि अल्लाह (तआला) की कृपा और उसकी दया तुम पर न होती, तो कुछ व्यक्तियों के अतिरिक्त तुम सभी शैतान के अनुयायी वन जाते ।

فَقَاتِلْ فِي سَبِيلِ اللَّهِ ۚ لَا تُكَلَّفُ إِلَّا نَفْسَكَ ۚ وَحَرِّضِ الْمُؤْمِنِينَ ۖ عَسَى اللَّهُ أَن يَكُفَّ بَأْسَ الَّذِينَ كَفَرُوا ۚ وَاللَّهُ أَشَدُّ بَأْسًا وَأَشَدُّ تَنكِيلًا ﴿٨٤﴾

(८४) तू अल्लाह तआला के मार्ग में धर्मयुद्ध करता रह, तुझे केवल तेरे प्रति ही आदेश दिया जाता है। हाँ, ईमानवालों को आकर्षित करता रह, अति सम्भव है कि अल्लाह (तआला) काफ़िरों के आक्रमण को रोक दे। और अल्लाह (तआला) अत्यधिक शक्तिशाली है एवं दंड देने में भी अति कठोर है।

مَّن يَشْفَعْ شَفَاعَةً حَسَنَةً يَكُن لَّهُ نَصِيبٌ مِّنْهَا ۖ وَمَن يَشْفَعْ شَفَاعَةً

(८५) जो व्यक्ति किसी पुण्य तथा भले कार्य करने की सिफ़ारिश करे, उसे भी उसका कुछ भाग मिलेगा और जो बुराई तथा कुकर्म करने

[1]यह कुछ निर्बल तथा व्यग्र मुसलमानों का आचरण, उनके सुधार के लिए वर्णित किया जा रहा है। शान्ति की सूचना से तात्पर्य मुसलमानों की सफलता एवं शत्रु का विनाश तथा पराजय की सूचना है। जिसे सुन कर शान्ति की लहर दौड़ जाती है और जिसके कारण कई बार आवश्यकता से अधिक भरोसा उत्पन्न हो जाता है जो हानि का कारण वन सकता है। और भय की सूचना से तात्पर्य मुसलमानों की पराजय और उनकी हत्या तथा हानि की सूचना है (जिससे मुसलमानों में निराशा फैलने तथा साहस हीनता की संभावना है) इसलिए उनसे कहा जा रहा है कि इस प्रकार की सूचना चाहे शान्ति की हो अथवा भय की उन्हें सुन कर जनसामान्य में फैलाने के वजाय रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम तक पहुँचा दो, अथवा ज्ञानियों और जो शोधकर्ता हों उन्हें पहुँचा दो, ताकि वह विचार करें कि यह सूचना सही है अथवा ग़लत यदि सही है तो उस समय उससे मुसलमानों का अवगत होना लाभकारी है अथवा अनभिज्ञ रहना लाभकारी है ? यह नियम वैसे तो सामान्य अवस्था के लिए भी बड़ा महत्व तथा अधिक लाभकारी है । परन्तु युद्ध काल में तो इसकी विशेषता और आवश्यकता और अधिक वढ़ जाती है।

سَيِّئَةً يَكُنْ لَهُ كِفْلٌ مِّنْهَا ۗ وَكَانَ اللَّهُ عَلَىٰ كُلِّ شَيْءٍ مُّقِيتًا ﴿٨٥﴾

की सिफ़ारिश करे, उसके लिए भी उसमें से एक भाग है और अल्लाह (तआला) हर वस्तु पर सामर्थ्य रखने वाला है।

وَإِذَا حُيِّيتُم بِتَحِيَّةٍ فَحَيُّوا بِأَحْسَنَ مِنْهَا أَوْ رُدُّوهَا ۗ إِنَّ اللَّهَ كَانَ عَلَىٰ كُلِّ شَيْءٍ حَسِيبًا ﴿٨٦﴾

(८६) और जब तुम्हें सलाम (अभिवादन) किया जाये तो उससे अच्छा उत्तर दो अथवा उन्हीं शब्दों को पलट दो ।[1] निःसंदेह, अल्लाह (तआला) हर चीज़ का हिसाब लेने वाला है।

اللَّهُ لَا إِلَٰهَ إِلَّا هُوَ ۚ لَيَجْمَعَنَّكُمْ إِلَىٰ يَوْمِ الْقِيَامَةِ لَا رَيْبَ فِيهِ ۗ وَمَنْ أَصْدَقُ مِنَ اللَّهِ حَدِيثًا ﴿٨٧﴾

(८७) अल्लाह वह है, जिसके अतिरिक्त कोई (सच्चा) पूज्य नहीं, वह तुम सब को अवश्य क़ियामत के दिन एकत्रित करेगा जिसके (आने) में कोई शंका नहीं, अल्लाह (तआला) से अधिक सत्य किस की बात होगी।

[1] تحية वास्तव में تحيية है। يا के يا में संधि के पश्चात تحية हो गया। इसका अर्थ दीर्घ आयु का आशिर्वाद है, यहाँ यह सलाम करने के अर्थ में है। (फ़तहुल क़दीर) अधिक अच्छा उत्तर देने की व्याख्या हदीस में इस प्रकार आयी है कि "अस्सलामु अलैकुम" के उत्तर में "व रहमतुल्लाह" की अधिकता और "अस्स्लामु अलैकुम व रहमतुल्लाह" के उत्तर में "व बर्कातुहू" की अधिकता कर दी जाये। परन्तु यदि कोई "अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाह व बर्कातुहू" कहे तो फिर अधिक किये बिना उन्हीं शब्दों में उत्तर दिया जाये। (इब्ने कसीर) और हदीस में है कि केवल "अस्सलामु अलैकुम" कहने से दस पुण्य, उसके साथ "व रहमतुल्लाह" कहने से बीस पुण्य और "व बर्कातुहु" कहने से तीस पुण्य मिलते हैं। (मुसनद अहमद भाग ४, पृष्ठ ४३९ तथा ४४०) ध्यान रहे कि यह आदेश मुसलमानों के लिए है, अर्थात एक मुसलमान जब दूसरे मुसलमान को सलाम करे। शरणार्थी अर्थात यहूदी तथा ईसाईयों को सलाम करना हो तो एक तो उनको सलाम करने में पहल न की जाये। दूसरे बढ़ोत्तरी न की जाये बल्कि केवल व अलैकुम के साथ उत्तर दिया जाये। (सहीह बुख़ारी, किताबुल इस्तिज़ान, मुस्लिम, किताबुस्सलाम)

فَمَا لَكُمْ فِي الْمُنٰفِقِيْنَ فِئَتَيْنِ وَاللّٰهُ اَرْكَسَهُمْ بِمَا كَسَبُوْا ۭ اَتُرِيْدُوْنَ اَنْ تَهْدُوْا مَنْ اَضَلَّ اللّٰهُ ۭ وَمَنْ يُّضْلِلِ اللّٰهُ فَلَنْ تَجِدَ لَهٗ سَبِيْلًا ﴿٨٨﴾

(८८) तुम्हें क्या हो गया है कि अवसरवादियों के विषय में दो गुट हो रहे हो ?[1] उन्हें तो उनके कर्मों के कारण अल्लाह (महान) ने औंधा कर दिया है।[2] अब क्या तुम यह चाहते हो कि उसे मार्ग दिखाओ, जिसे अल्लाह ने विपथ कर दिया है, तो जिसे अल्लाह विपथ कर दे कदापि तुम उसके लिए कोई मार्ग न पाओगे।[3]

وَدُّوْا لَوْ تَكْفُرُوْنَ كَمَا كَفَرُوْا فَتَكُوْنُوْنَ سَوَاۗءً فَلَا تَتَّخِذُوْا مِنْهُمْ اَوْلِيَاۗءَ حَتّٰي يُھَاجِرُوْا فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۭ فَاِنْ تَوَلَّوْا فَخُذُوْھُمْ وَاقْتُلُوْھُمْ حَيْثُ وَجَدْتُّمُوْھُمْ ص

(८९) वह इच्छा करते हैं कि जैसे काफ़िर वे हैं तुम भी उनकी भाँति ईमान का इंकार करने लगो तथा तुम सभी समान बन जाओ, अतः उनमें से किसी को वास्तविक मित्र न बनाओ[4] जब तक वह अल्लाह के मार्ग में हिजरत (प्रवास) न करें, फिर यदि (इससे) मुँह फेरें तो

[1]यह प्रश्न इंकार के लिए है अर्थात तुम्हारे मध्य इन अवसरवादियों के विषय में मतभेद नहीं होना चाहिए था। इन अवसरवादियों से तात्पर्य वह लोग हैं जो ओहद के युद्ध के समय मदीना शहर के बाहर कुछ दूर जाने के बाद वापस आ गये थे कि हमारी बात नहीं मानी गयी। (सहीह बुख़ारी तफ़सीर सूरः अन-निसा, सहीह मुस्लिम किताबुल मुनाफ़िक़ीन) जैसाकि विस्तार से पूर्व में ग़ुजर चुका है इन अवसरवादियों के लिए मुसलमानों में दो गुट बन गये थे। एक गुट का कहना था कि इन अवसरवादियों से हमें अभी निपटना चाहिए, दूसरा गुट इसे अवसर तथा परिस्थिति के विपरीत समझता था।

[2] كسبوا (कर्म) से तात्पर्य रसूल का विरोध तथा धर्मयुद्ध से मुँह फेरना है। اركسهم औंधा कर दिया अर्थात जिस अविश्वास और विपदा से निकले थे, उसी में ले जाकर फंसा दिया अथवा इसके कारण नष्ट कर दिया।

[3]जिसको अल्लाह भटका दे अर्थात निरन्तर अधर्म तथा कटुता के कारण उनके दिलों पर मुहर लगा दे उन्हें कोई मार्ग पर नहीं ले जा सकता।

[4]हिजरत (इस्लाम के लिए देश त्याग) इस बात का प्रमाण है कि अब यह शुद्ध मुसलमान बन गये हैं। इस अवस्था में मित्रता तथा प्रेम उचित होगा।

وَلَا تَتَّخِذُوا مِنْهُمْ وَلِيًّا وَلَا نَصِيرًا ﴿٨٩﴾

उन्हें पकड़ो[1] तथा हत करो जहाँ पाओ। सावधान ! उनमें से किसी को मित्र एवं सहायक न समझ बैठो।

إِلَّا الَّذِينَ يَصِلُونَ إِلَىٰ قَوْمٍ بَيْنَكُمْ وَبَيْنَهُم مِّيثَاقٌ أَوْ جَاءُوكُمْ حَصِرَتْ صُدُورُهُمْ أَن يُقَاتِلُوكُمْ أَوْ يُقَاتِلُوا قَوْمَهُمْ ۚ وَلَوْ شَاءَ اللَّهُ لَسَلَّطَهُمْ عَلَيْكُمْ فَلَقَاتَلُوكُمْ ۚ فَإِنِ اعْتَزَلُوكُمْ فَلَمْ يُقَاتِلُوكُمْ وَأَلْقَوْا إِلَيْكُمُ السَّلَمَ فَمَا

(९०) परन्तु जो उस समुदाय से संबन्ध रखते हों जिनके तथा तुम्हारे बीच संधि हो चुकी हो अथवा जो तुम्हारे पास आयें तो उनके दिल संकुचित हो रहे हों कि तुमसे लड़ें,[2] तथा अपने समुदाय से लड़ें, और यदि अल्लाह चाहता तो उन्हें तुम पर शक्ति प्रदान कर देता तथा वह अवश्य तुम से लड़ते[3] तो यदि वह तुमसे अलग रहें और लड़ाई न करें और तुम्हारी ओर शांति का संदेश प्रस्तुत[4]

---

[1]अर्थात जब तुम्हें उन पर वश तथा अधिकार प्राप्त हो जाये।

[2]अर्थात जिनसे लड़ने का आदेश दिया जा रहा है। इससे दो प्रकार के लोग अलग हैं। एक वह लोग, जो ऐसे समुदाय से सम्बन्ध रखते हैं अर्थात ऐसे समुदाय के लोग हैं अथवा उसकी शरण में हैं, जिस समुदाय से तुम्हारी संधि है। दूसरे वह जो तुम्हारे पास इस अवस्था में आते हैं कि अपने समुदाय से मिलकर तुमसे अथवा तुमसे मिलकर अपने समुदाय से युद्ध करने से कतराते हैं। अर्थात तुम्हरे पक्ष में लड़ना पसन्द करते हैं और न तुम्हारे विपक्ष में।

[3]अर्थात यह अल्लाह का उपकार है कि उन्हें लड़ाई से अलग कर दिया वरन् यदि अल्लाह तआला उनके दिल में भी अपने समुदाय के पक्ष में लड़ने का विचार डाल देता, तो अवश्य वह भी तुम से लड़ते इसलिए यदि वास्तव में यह युद्ध से अलग रहें, तो तुम भी इनके विरोध में कोई प्रगति न करो।

[4]अलग रहें, न लड़ें, तुम्हारी ओर सन्धि का हाथ बढ़ायें, सभी का भावार्थ एक ही है। स्पष्टीकरण तथा विवरण के लिए यह तीन शब्द प्रयोग किये गये हैं ताकि मुसलमान उनके विषय में सावधान रहें। क्योंकि जो युद्ध तथा घटना से पूर्व ही अलग हो गये हैं और उनका यह अलग होना मुसलमानों के पक्ष में लाभकारी भी है। इसीलिए अल्लाह तआला ने इसे उपकार के रूप में वर्णन किया है तो उनके विषय में छेड़छाड़ की उपाय अथवा असावधानी कार्य उनके अन्दर भी विरोध तथा लड़ाई की भावना जागृत

جَعَلَ اللّٰهُ لَكُمْ عَلَيْهِمْ سَبِيلًا ﴿٩٠﴾

करें, तो (फिर) अल्लाह ने तुम्हारे लिये उन पर कोई मार्ग युद्ध का नहीं बनाया है।

سَتَجِدُونَ اٰخَرِينَ يُرِيدُونَ اَنْ يَّاْمَنُوكُمْ وَ يَاْمَنُوا قَوْمَهُمْ ؕ كُلَّمَا رُدُّوْٓا اِلَى الْفِتْنَةِ اُرْكِسُوا فِيهَا ۚ فَاِنْ لَّمْ يَعْتَزِلُوكُمْ وَيُلْقُوْٓا اِلَيْكُمُ السَّلَمَ وَيَكُفُّوْٓا اَيْدِيَهُمْ فَخُذُوهُمْ وَاقْتُلُوهُمْ حَيْثُ ثَقِفْتُمُوهُمْ ط

(९१) तुम कुछ दुसरों को पाओगे जो तुम से तथा अपने वर्ग से सुरक्षित[1] रहना चाहते हैं, तथा जब कभी वह उपद्रव[2] की ओर फेरे जाते हैं तो उसमें औंधे मुहँ पड़ जाते हैं, यदि वह तुम से विलग न रहें तथा तुम से संधि न करें और अपने हाथ न रोकें[3] तो उन्हें पकड़ो

कर सकता है जो मुसलमानों के लिए हानिकारक है। इसलिए जब तक वह वर्णित अवस्था में स्थिर रहें उनसे न लड़ो। जिसका उदाहरण उस गुट से है जिसका सम्बन्ध वनी हाशिम से था, यह बद्र के युद्ध के दिन मक्का के मूर्तिपूजकों के साथ युद्धस्थल में तो आये परन्तु यह उनके साथ सम्मिलित होकर मुसलमानों से युद्ध नहीं करना चाहते थे। जैसे आदरणीय अब्बास (رضي الله عنه) रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के चचा) आदि, जो अभी तक मुसलमान नहीं हुए थे। इसीलिए दिखाने के लिए काफ़िरों के कैम्प में थे। इसलिए नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने आदरणीय अब्बास (رضي الله عنه) को हत्या करने से रोक दिया था और उन्हें केवल बंदी बनाने पर ही बस किया। سِلْمٌ यहाँ مُسَالَمَة अर्थात संधि के अर्थों में है।

[1]यह एक तीसरे गुट का वर्णन है, जो अवसरवादी था। यह मुसलमानों के पास आते तो इस्लाम का प्रदर्शन करते, ताकि मुसलमानों से सुरक्षित रहें। अपनी जाति के लोगों के पास जाते तो शिर्क तथा मूर्तिपूजा करते, ताकि वह उन्हें अपने ही धर्म का अनुयायी समझें और इस प्रकार दोनों से लाभ प्राप्त कर सकें।

[2]उपद्रव से तात्पर्य मिश्रणवाद भी हो सकता है। أُركسوا فيها उसी शिर्क में लौटा दिये जाते। अथवा उपद्रव से तात्पर्य लड़ाई है कि जब उन्हें मुसलमानों के साथ लड़ने के लिए बुलाया अर्थात लौटाया जाता है, तो वह उस पर तैयार हो जाते हैं।

[3]يُلقوا और يكفوا का संबन्ध يعتزلوكم से है अर्थात सभी नकारात्मक अर्थ में हैं, सभी में لم (नकार) लगेगा।

وَاُولٰٓئِكُمْ جَعَلْنَا لَكُمْ عَلَيْهِمْ سُلْطٰنًا مُّبِيْنًا ۝٩١

और जहाँ पाओ हत करो, यही वह हैं जिन पर हमने तुम को खुला तर्क दिया है।[1]

وَمَا كَانَ لِمُؤْمِنٍ اَنْ يَّقْتُلَ مُؤْمِنًا اِلَّا خَطَـًٔا ۚ وَمَنْ قَتَلَ مُؤْمِنًا خَطَـًٔا فَتَحْرِيْرُ رَقَبَةٍ مُّؤْمِنَةٍ وَّدِيَةٌ مُّسَلَّمَةٌ اِلٰٓى اَهْلِهٖٓ اِلَّآ اَنْ يَّصَّدَّقُوْا ۚ فَاِنْ كَانَ مِنْ قَوْمٍ عَدُوٍّ لَّكُمْ وَهُوَ مُؤْمِنٌ

(९२) किसी मुसलमान के लिये उचित नहीं कि किसी मुसलमान की हत्या कर दे परन्तु चूक[2] से हो जाये (तो और बात है) तथा जो व्यक्ति किसी मुसलमान की हत्या चूक से कर दे [3] तो उस पर एक मुसलमान दास (अथवा दासी) मुक्त करना और हत के संबन्धियों को खून का मूल्य देना है।[4] परन्तु यह और

---

[1]इस बात पर कि वास्तव में उनके दिलों में द्वयवाद तथा उनके मनों में तुम्हारे प्रति ईर्ष्या तथा कटुता है। तभी तो वह तनिक प्रयास से पुनः उपद्रव (मिश्रणवाद अथवा तुम्हारे विरुद्ध लड़ने को तैयार होने) में लिप्त हो गये।

[2]यह नकार निषेध के अर्थो में है जो निषेध अभियाचक है अर्थात एक मुसलमान के लिये दूसरे मुसलमान की हत्या करना निषेध तथा अवैध है। जैसे

﴿ وَمَا كَانَ لَكُمْ اَنْ تُؤْذُوْا رَسُوْلَ اللّٰهِ ﴾

"तुम्हारे योग्य नहीं है कि तुम अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम) को कष्ट पहुँचाओ।" (*अल-अहजाब-५३*) अर्थात हराम है।

[3]ग़लती के कारण तथा परिस्थितियाँ कई एक हो सकती हैं। उद्देश्य है कि विचार तथा इरादा हत्या करने का न हो। परन्तु किसी कारणवश हत्या हो जाये।

[4]यह ग़लती से हत्या के अपराध के दंड का वर्णन हो रहा है, जो दो रूप में है। एक प्रायश्चित एवं क्षमा-याचना के रूप में है। अर्थात एक मुसलमान दास को स्वतन्त्र करना तथा दूसरी मानव अधिकार के रूप में है। और वह है देयत (रक्त का मूल्य) मृतक के रक्त के बदले मृतक के उत्तराधिकारियों को जो कुछ भी दिया जाये, वह देयत है। और देयत की मात्रा हदीसों के आधार पर सौ ऊँट अथवा उसके समतुल्य नगद स्वर्ण, चाँदी अथवा मुद्रा के रूप में होगी।

टिप्पणी : ध्यान रहे कि जान बूझ कर हत्या में ख़ून का बदला ख़ून है (जिसे क़सास कहते हैं) अथवा दंड रूप में देयत है। और दंड स्वरूप देयत की सीमा सौ ऊँट है। जो आयु तथा स्वास्थ्य के अनुसार तीन प्रकार के होने चाहिए। जबकि भूल-चूक में हत्या होने से केवल देयत है, प्रतिहत्या नहीं है। इस देयत में मात्रा सौ ऊँट हैं परन्तु स्तर

فَتَحْرِيْرُ رَقَبَةٍ مُّؤْمِنَةٍ ط وَاِنْ كَانَ مِنْ قَوْمٍ بَيْنَكُمْ وَبَيْنَهُمْ مِّيْثَاقٌ فَدِيَةٌ مُّسَلَّمَةٌ اِلٰٓى اَهْلِهٖ وَتَحْرِيْرُ رَقَبَةٍ مُّؤْمِنَةٍ ج فَمَنْ لَّمْ يَجِدْ فَصِيَامُ شَهْرَيْنِ مُتَتَابِعَيْنِ ز تَوْبَةً مِّنَ اللّٰهِ ط

बात है कि वह क्षमा कर दें,[1] और यदि वह हत तुम्हारे शत्रु वर्ग से हो और मुसलमान हो तो एक मुसलमान दास मुक्त करना आवश्यक है,[2] और यदि हत उस समुदाय से है जिसके तथा तुम्हारे (मुसलमानों के) बीच संधि है तो रक्त का मूल्य उसके संबन्धियों को अदा करना है और एक मुसलमान दास मुक्त करना भी है,[3] और जिसे उपलब्ध न हो उसको दो

इतना कड़ा नहीं है। इसके अतिरिक्त इसका मूल्य सुनन अबू दाऊद की हदीस में आठ सौ दीनार अथवा आठ हज़ार दिरहम और तिर्मिज़ी के कथनानुसार बारह हज़ार दिरहम बताया गया है। इसी प्रकार आदरणीय उमर (رضي الله عنه) ने अपने शासन काल में देयत के मूल्य में कमी तथा अधिकता तथा विभिन्न व्यवसाय वालों के अनुकूल उनके विभिन्न मूल्य रखे थे। (इरवाउल ग़लील भाग: ८) (सौ ऊँट के) आधार पर उसका मूल्य हर काल में उसके मूल्य के अनूसार निर्धारित किया जायेगा। (विस्तार से जानकारी के लिए धार्मिक नियमों, हदीस तथा विद्वानों की पुस्तकें देखें।

[1]क्षमा कर देने को दान के रूप में वर्णन करने का उद्देश्य क्षमा करने का प्रलोभन देना है।

[2]अर्थात इस अवस्था में देयत नहीं होगी। इस का कारण कुछ ने इस प्रकार वर्णन किया है कि क्योंकि उसके सम्बन्धी शत्रुता के आधार पर लड़ने वाले काफ़िर हैं, इस लिए वह मुसलमान के देयत लेने के अधिकारी नही हैं। कुछ ने यह कारण वर्णित किये हैं कि इस मुसलमान ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेने के पश्चात हिजरत नहीं की जबकि उस समय हिजरत पर बड़ा बल दिया गया था। इस आलस्य के कारण उसके ख़ून की निषेधता कम है। (फ़तहुल क़दीर)

[3]यह एक तीसरी अवस्था है। इसमें भी वह दंड तथा देयत है जो पहली अवस्था में है। कुछ ने कहा यदि हत संरक्षण में है, तो उसकी देयत मुसलमान की देयत की आधी होगी क्योंकि हदीस में काफ़िर की देयत मुसलमान की देयत से आधी वर्णित की गयी है (इरवाउल ग़लील भाग ४, पृष्ठ ३०) लेकिन अधिक उचित बात यही प्रतीत होती है कि इस तीसरी अवस्था में भी हत मुसलमान ही का आदेश वर्णित किया जा रहा है।

وَكَانَ اللهُ عَلِيمًا حَكِيمًا ﴿٩٢﴾

महीने लगातार रोजा (व्रत) रखना[1] है अल्लाह से क्षमा करवाने के लिए, तथा अल्लाह ज्ञानी व विवेकवाला है।

وَمَن يَقْتُلْ مُؤْمِنًا مُّتَعَمِّدًا فَجَزَآؤُهُ جَهَنَّمُ خَالِدًا فِيهَا وَغَضِبَ اللهُ عَلَيْهِ وَلَعَنَهُ وَأَعَدَّ لَهُ عَذَابًا عَظِيمًا ﴿٩٣﴾

(९३) और जो कोई किसी मुसलमान की जान-बूझ कर हत्या कर डाले उसका दंड नरक है, जिसमें वह सदैव रहेगा, उस पर अल्लाह (तआला) का क्रोध है।[2] उसे अल्लाह (तआला) ने धिक्कारा है, और उसके लिए बहुत बड़ी यातना तैयार कर रखी है।[3]

---

[1]अर्थात यदि दास स्वतन्त्र करने की शक्ति न हो तो, पहली अवस्था तथा इस अन्तिम अवस्था में देयत के साथ निरन्तर (बिना अन्तर) के दो माह व्रत (रोज़े) हैं यदि मध्य में अन्तर हो गया, तो पुनः नये सिरे से व्रत रखने आवश्यक होंगे। परन्तु धार्मिक कारणों से अन्तर हो जाने पर नये सिरे से व्रत रखने की आवश्यकता नहीं है। जैसे मासिक धर्म, प्रसव रक्त अथवा कठिन रोग के कारण व्रत रखने में बाधक हो, यात्रा को धार्मिक कारण मानने में मत भेद है। (इब्ने कसीर)

[2]यह जान बूझकर की गयी हत्या का दंड है। हत्या तीन प्रकार की होती है : (१) अनजाने में हत्या (जिसका वर्णन इस आयत के पूर्व आयत में है) (२) शंका निश्चय पूर्वक हत्या के समान (जो हदीस से सिद्ध है) (३) जान बूझकर हत्या, जिसका अर्थ है किसी की निश्चय पूर्वक हत्या की गयी हो, और इसके लिए उस साधन तंत्र का प्रयोग करना जिससे साधारणतः हत्या की जाती है, जैसे तलवार, भाला आदि। इस आयत में मुसलमान की हत्या पर अति कठोर चेतावनी दी गयी है जैसे : इसका दंड नरक है, जिसमें सदैव रहना होगा, इसके अतिरिक्त अल्लाह तआला का क्रोध और उसकी धिक्कार और बहुत बड़ी यातना भी होगी। इतने कठोर दंड एक ही समय में किसी अन्य पाप में वर्णित नहीं किये गये हैं। जिससे यह स्पष्ट होता है कि एक मुसलमान की हत्या अल्लाह तआला के यहाँ कितना घोर अपराध है। हदीस में भी इसकी कटु आलोचना तथा इस पर कठोर चेतावनी का वर्णन है।

[3]मुसलमान के हत्यारे की क्षमा स्वीकार है अथवा नहीं ? कुछ विद्वान इस अपराध के कठोर दंड की चेतावनी के आधार पर क्षमा स्वीकार न होने के पक्ष में हैं। परन्तु क़ुरआन तथा हदीस के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि स्वच्छ मन से माँगी गयी क्षमा से प्रत्येक पाप क्षमा हो सकता है। ﴿إِلَّا مَن تَابَ وَءَامَنَ وَعَمِلَ عَمَلًا صَالِحًا﴾ (अल-फ़ुरक़ान-७०) तथा

(९४) हे ईमानवालो ! जब तुम अल्लाह की राह में जा रहे हो तो जाँच-पड़ताल कर लो और जो तुम से सलाम अलैक कहे तुम उसे यह न कहो कि तू ईमानवाला नहीं ।[1] तुम सांसारिक जीवन सामग्री की खोज में हो तो अल्लाह (तआला) के पास बहुत सी सुख सामग्रियाँ हैं ।[2] पहले तुम भी ऐसे ही थे, फिर अल्लाह (तआला) ने तुम पर उपकार

يَاأَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا إِذَا ضَرَبْتُمْ فِي سَبِيلِ اللَّهِ فَتَبَيَّنُوا وَلَا تَقُولُوا لِمَنْ أَلْقَى إِلَيْكُمُ السَّلَامَ لَسْتَ مُؤْمِنًا تَبْتَغُونَ عَرَضَ الْحَيَاةِ الدُّنْيَا فَعِنْدَ اللَّهِ مَغَانِمُ كَثِيرَةٌ ۚ كَذَٰلِكَ كُنْتُمْ مِنْ قَبْلُ فَمَنَّ اللَّهُ عَلَيْكُمْ فَتَبَيَّنُوا ۚ

अन्य क्षमा की आयतें सामान्य हैं । प्रत्येक पाप चाहे छोटा हो या बड़ा अथवा बहुत बड़ा, स्वच्छ हृदय से माँगी गयी क्षमा द्वारा उसकी क्षमा सम्भव है । यहाँ इसका दंड नरक जो कहा गया है, इसका अर्थ यह है कि यदि उसने क्षमा न माँगी तो उसका दंड नरक है, जो अल्लाह तआला उसके इस अपराध पर दे सकता है । इसी प्रकार क्षमा न माँगने पर नरक में सदैव रहने का अर्थ भी लम्बे समय के लिए है क्योंकि नरक में सदैव रहने का दंड केवल काफ़िरों और मूर्तिपूजकों के लिए ही है । इसके अतिरिक्त हत्या का सम्बन्ध यद्यपि भक्तों के अधिकार से है, जो क्षमा से समाप्त नहीं होते, परन्तु अल्लाह तआला अपनी कृपा से उसकी पूर्ति करके समाप्त कर सकता है । इस प्रकार हत को भी बदला मिल जायेगा और हत्यारे की भी क्षमा स्वीकार हो जायेगी । (फ़तहुल क़दीर तथा इब्ने कसीर)

[1]हदीसों में आता है कि कुछ सहाबा एक स्थान से गुजरे जहाँ एक गड़ेरिया बकरियाँ चरा रहा था, मुसलमानों को देखकर गड़ेरिये ने सलाम किया, कुछ सहाबा ने समझा कि शायद वह अपनी प्राण रक्षा के लिए मुसलमान बता रहा है, अत: उन्होंने बिना छान बीन किये उसकी हत्या कर दी और बकरियाँ युद्ध में प्राप्त सामग्री के रूप में लेकर नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की सेवा में उपस्थित हुए, जिस पर यह आयत उतरी । (सहीह बुख़ारी, त्रिमिज़ी तफ़सीर सूर: अन-निसा) कुछ कथनों में आता है कि नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने यह भी कहा कि मक्के में तुम भी इस गड़ेरिया की भाँति ईमान छिपाने पर विवश थे । (सहीह बुख़ारी, किताबुल देयात) (तात्पर्य यह था कि उसकी हत्या का कोई औचित्य नहीं था)

[2]अर्थात तुम्हें कुछ बकरियाँ उस हत से प्राप्त हो गईं, यह कुछ भी नहीं है । अल्लाह तआला के पास इससे कहीं अधिक श्रेष्ठ पुरस्कार हैं, जो अल्लाह तथा रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की आज्ञापालन करके तुम्हें दुनिया में भी प्राप्त हो सकता है, और आख़िरत (परलोक) में उनका मिलना निश्चत ही है ।

إِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ خَبِيْرًا ﴿٩٤﴾

किया, अतएव तुम अवश्य खोज (छानबीन) कर लिया करो, नि:संदेह अल्लाह (तआला) तुम्हारे कर्मों को भली-भाँति जानता है।

لَا يَسْتَوِي الْقٰعِدُوْنَ مِنَ الْمُؤْمِنِيْنَ غَيْرُ أُولِي الضَّرَرِ وَالْمُجٰهِدُوْنَ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ بِأَمْوَالِهِمْ وَأَنْفُسِهِمْ ۭ فَضَّلَ اللّٰهُ الْمُجٰهِدِيْنَ بِأَمْوَالِهِمْ وَأَنْفُسِهِمْ عَلَى الْقٰعِدِيْنَ دَرَجَةً ۭ وَكُلًّا وَّعَدَ اللّٰهُ الْحُسْنٰى ۭ وَفَضَّلَ اللّٰهُ الْمُجٰهِدِيْنَ عَلَى الْقٰعِدِيْنَ أَجْرًا عَظِيْمًا ﴿٩٥﴾

(९५) जो मुसलमान अकारण बैठ रहें तथा जो अल्लाह के मार्ग में अपने तन-धन के साथ धर्मयुद्ध करते हों बराबर न होंगे[1] अल्लाह ने उन्हें जो अपने धनों तथा प्राणों के साथ धर्मयुद्ध करते हैं उन पर जो बैठे रहते हैं दर्जों में अधिक प्रधानता दी है तथा वैसे तो प्रत्येक को शुभवचन[2] दिया है, किन्तु अल्लाह ने जो धर्मयुद्ध करने वाले हैं उनको बैठे रहने वालों पर महा प्रतिकार की प्रधानता दी है।

---

[1]जब यह आयत उतरी कि अल्लाह की राह में धर्मयुद्ध करने वाले तथा घरों में बैठे रहने वाले समान नहीं तो आदरणीय अब्दुल्लाह बिन उम्मे मकतूम (अंधे सहाबी) आदि ने निवेदन किया कि हम तो अपंग हैं, जिस के कारण हम धर्मयुद्ध में भाग नहीं ले सकते। तात्पर्य यह था कि घर में बैठे रहने के कारण धर्मयुद्ध में भाग लेने वालों के समान हम बदला तथा पुण्य नहीं प्राप्त कर सकेंगे, जबकि हम किसी आनन्द अथवा जान बचाने के भय से घरों में नहीं बैठें हुए हैं, बल्कि हमारा धार्मिक नियमों के आधार पर रुकना उचित है। इस पर अल्लाह तआला ने "अकारण" का अपवाद उतारा अर्थात अकारण बैठने वाले धर्म योद्धाओं के समान नहीं। जिसका अर्थ हुआ कि धार्मिक नियमों के आधार पर घर पर बैठने वालों को इस आधार पर धर्म योद्धाओं के समान बदला मिलेगा। जैसा कि हदीस में आता है कि मदीने में बैठे हुए अपंग तथा अपाहिज धर्म योद्धाओं के साथ बदले में समान हैं क्योंकि उनको कारणों से रुकना पड़ा है। (सहीह बुखारी, किताबुल जिहाद)

[2]अर्थात तन, मन और धन से धर्मयुद्ध करने वालों को जो स्थान प्राप्त होगा, धर्मयुद्ध में भाग न लेने वाले यद्यपि इससे वंचित रहेंगे, फिर भी अल्लाह तआला ने दोनों को भलाई का वचन दिया है। इससे आलिमों ने यह अर्थ निकाला है कि सामान्य परिस्थितियों में धर्मयुद्ध अनिवार्य नहीं, आवश्यकता अनुसार अनिवार्य है अर्थात यदि आवश्यकतानुसार लोग धर्मयुद्ध में भाग ले लें तो उस क्षेत्र के दूसरे लोगों की ओर से अनिवार्यता की पूर्ति समझी जायेगी।

درَجٰتٍ مِّنْهُ وَمَغْفِرَةً وَّرَحْمَةً ۭ وَكَانَ اللّٰهُ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ۝

(९६) अपनी ओर से दर्जे की भी तथा क्षमा की भी एवं दया की भी और अल्लाह क्षमाशील कृपालु है।

اِنَّ الَّذِيْنَ تَوَفّٰىھُمُ الْمَلٰۗىِٕكَةُ ظَالِمِيْٓ اَنْفُسِهِمْ قَالُوْا فِيْمَ كُنْتُمْ ۭ قَالُوْا كُنَّا مُسْتَضْعَفِيْنَ فِي الْاَرْضِ ۭ قَالُوْٓا اَلَمْ تَكُنْ اَرْضُ اللّٰهِ وَاسِعَةً فَتُھَاجِرُوْا فِيْھَا ۭ فَاُولٰۗىِٕكَ مَاْوٰىھُمْ جَهَنَّمُ ۭ وَسَاۗءَتْ مَصِيْرًا ۝

(९७) जो लोग अपने आप पर अत्याचार करने वाले हैं, जब फ़रिश्ते उनके प्राण निकालते हैं तो कहते हैं कि तुम किस दशा में थे ?[1] वह कहते हैं कि हम धरती में निर्बल थे,[2] तो प्रश्न करते हैं कि क्या अल्लाह की भूमि विस्तृत न थी कि तुम उसमें प्रवास कर जाते ? इन्हीं लोगों का स्थान नरक है तथा वह बुरा स्थान है।

---

[1]यह आयत उन लोगों के विषय में उतरी है जो मक्का और उसके निकटवर्ती क्षेत्र में रहते थे और मुसलमान हो चुके थे, परन्तु उन्होंने अपने पूर्वजों के देश तथा परिवार को छोड़ कर हिजरत करने को महत्व नहीं दिया। जबकि मुसलमानों की शक्ति को एक स्थान पर एकत्रित करने के लिए हिजरत का अति बलपूर्वक आदेश दिया जा चुका था। इसलिए जिन्होंने इस हिजरत के आदेश का पालन नहीं किया, उनको यहाँ अत्याचारी बताया गया है और उनका स्थान नरक बताया गया है। जिससे यह ज्ञात हुआ कि परिस्थिति तथा समय के आधार पर इस्लाम के कुछ आदेश कुफ़्र अथवा इस्लाम के पर्यायवाची बन जाते हैं। जैसे इस अवसर पर हिजरत इस्लाम तथा इसकी अवहेलना कुफ़्र के पर्यायवाची हो गयी। इससे यह विदित हुआ कि काफ़िरों के देश से हिजरत करना अनिवार्य है, जहाँ इस्लाम की शिक्षा के अनुसार कार्यरत होना कठिन हो और वहाँ रहना काफ़िरों के साहस को बढ़ाने का कारण बने।

[2]यहाँ "स्थान" से तात्पर्य आयत के उतरने की विशेषता के आधार पर मक्का और उसका समीपवर्ती क्षेत्र है और अल्लाह की धरती से तात्पर्य मदीना है। परन्तु आदेश के आधार पर सामान्य धरती है अर्थात पहला स्थान काफ़िरों का क्षेत्र होगा, जहाँ इस्लाम की शिक्षाओं के अनुसार कार्य करना कठिन हो जाये। और अल्लाह की धरती से तात्पर्य वह प्रत्येक क्षेत्र होगा जहाँ मनुष्य अल्लाह के धर्म के पालन के उद्देश्य से हिजरत करके जाते हैं।

إِلَّا الْمُسْتَضْعَفِينَ مِنَ الرِّجَالِ وَالنِّسَاءِ وَالْوِلْدَانِ لَا يَسْتَطِيعُونَ حِيلَةً وَلَا يَهْتَدُونَ سَبِيلًا ﴿٩٨﴾

(९८) परन्तु जो पुरुष तथा स्त्रियाँ एवं बालक विवश हैं जो कोई उपाय नहीं कर सकते और न मार्ग जानते हैं ।[1]

فَأُولَٰئِكَ عَسَى اللَّهُ أَنْ يَعْفُوَ عَنْهُمْ ۚ وَكَانَ اللَّهُ عَفُوًّا غَفُورًا ﴿٩٩﴾

(९९) अति सम्भव है कि अल्लाह (तआला) उन्हें क्षमा कर दे, और अल्लाह सहिष्णु क्षमाशील है ।

وَمَنْ يُهَاجِرْ فِي سَبِيلِ اللَّهِ يَجِدْ فِي الْأَرْضِ مُرَاغَمًا كَثِيرًا وَسَعَةً ۚ وَمَنْ يَخْرُجْ مِنْ بَيْتِهِ مُهَاجِرًا إِلَى اللَّهِ وَرَسُولِهِ ثُمَّ يُدْرِكْهُ الْمَوْتُ فَقَدْ وَقَعَ أَجْرُهُ عَلَى اللَّهِ ۗ وَكَانَ اللَّهُ غَفُورًا رَحِيمًا ﴿١٠٠﴾

(१००) और जो कोई अल्लाह की राह में प्रवास करेगा, वह धरती पर बहुत से निवास स्थान भी पायेगा तथा सम्पन्नता भी ।[2] और जो कोई अपने घर से अल्लाह (तआला) तथा उसके रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की ओर निकल पड़ा फिर उसे मृत्यु ने पकड़ लिया हो तो भी अवश्य उसका फल अल्लाह (तआला) के ऊपर होगा ।[3] तथा अल्लाह (तआला) क्षमा करने वाला कृपालु है ।

---

[1]यह उन पुरुषों-स्त्रियों तथा बालकों को इस आदेश से अलग किया है, जो संसाधन से वंचित तथा जो मार्ग से भी अनजान थे । बालक यद्यपि धार्मिक नियमों का पालन करने के लिए बाध्य नहीं हैं, परन्तु यहाँ उनका वर्णन करके हिजरत की विशेषता को और स्पष्ट किया गया है कि बालक भी हिजरत करें अथवा फिर यहाँ पर व्यस्क आयु के निकट पहुँचने वाले बालक होगें ।

[2]इसमें हिजरत का प्रलोभन तथा मूर्तिपूजकों से विलग रहने पर बल दिया जा रहा है । मुरागमन مراغما का अर्थ स्थान, निवास स्थान अथवा शरण स्थल है । और सअतन् سعة का अर्थ जीविका स्थान तथा देशों का विस्तार तथा धन-धान्य की अधिकता है ।

[3]इसमें नियत (ध्यान) के आधार पर प्रतिकार तथा पुण्य मिलने का विश्वास दिलाया गया है चाहे मृत्यु के कारण वह उस कार्य को पूर्ण न कर सका हो । जैसाकि हदीस में पूर्व के समुदाय में एक व्यक्ति के द्वारा की गयी सौ हत्याओं का वर्णन है, जो क्षमा के लिए सत्कर्मियों की बस्ती की ओर जा रहा था कि मार्ग ही में उसकी मृत्यु हो गयी । अल्लाह तआला ने सत्कर्मियों की बस्ती दूसरी बस्ती की अपेक्षा निकटतम कर दिया । जिसके कारण उसे दया के फ़रिश्ते उसे अपने साथ ले गये (सहीह बुख़ारी, किताबुल अम्बिया अध्याय संख्या ५४ व मुस्लिम, किताबुत तौबा बाब क़ूबूलित्तौ-बतिल क़ातिल व इन

وَإِذَا ضَرَبْتُمْ فِي الْأَرْضِ فَلَيْسَ عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ أَنْ تَقْصُرُوا مِنَ الصَّلَوٰةِ ۖ إِنْ خِفْتُمْ أَنْ يَفْتِنَكُمُ الَّذِينَ كَفَرُوا ۚ إِنَّ الْكَافِرِينَ كَانُوا لَكُمْ عَدُوًّا مُبِينًا ﴿١٠١﴾

(१०१) और जब धरती में यात्रा करो तो तुम पर नमाज़ क़स्र करने (चार रकअत की नमाज़ दो रकअत पढ़ने में कोई दोष नहीं), यदि तुम्हें यह भय हो कि काफ़िर (विश्वासहीन) तुम्हें कष्ट देंगे,[1] नि:संदेह विश्वासहीन तुम्हारे खुले शत्रु हैं।

कथुर क़त्लुहू) इसी प्रकार जो व्यक्ति हिजरत के विचार से घर से निकले, परन्तु मार्ग में ही उसकी मृत्यु हो जाये तो अल्लाह तआला की ओर से हिजरत का पुण्य अवश्य मिलेगा यद्यपि वह हिजरत के उद्देश्य को पूर्ण नहीं कर सका। जैसाकि हदीस में भी हैं। नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया :

«إِنَّمَا الْأَعْمَالُ بِالنِّيَّاتِ» «وَإِنَّمَا لِكُلِّ امْرِىءٍ مَا نَوَىٰ» (कर्म विचारों पर निर्भर हैं) "मनुष्य के लिए वही है, जिसका उसने विचार किया।" जिसने अल्लाह और उसके रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के लिए हिजरत किया, तो उसकी हिजरत उन ही के लिए है, और जिसने दुनिया प्राप्त करने अथवा किसी स्त्री से विवाह करने के उद्देश्य से हिजरत की तो उसकी हिजरत उसी के लिए है, जिस उद्देश्य से उसने हिजरत की (सहीह बुख़ारी बाब वदइल वह्य, मुस्लिम किताबुल इमार:)

यह आदेश सामान्य है, जो धर्म के प्रत्येक कार्य में सम्मिलित है अर्थात उसको करते समय अल्लाह की प्रसन्नता ध्यान में रहेगी तो वह श्रेष्ठ स्वीकार्य है अन्यथा रद्द होगा।

[1]इसमें यात्रा की स्थिति में नमाज क़स्र करना (चार रकआत वाली नमाज को दो रकअत ही पढ़ने) की अनुमति प्रदान की जा रही है। "यदि तुम्हें भय हो" सामयिक परिस्थितियों के आधार पर है। क्योंकि उस समय समस्त अरब युद्ध क्षेत्र बना हुआ था। किसी ओर की यात्रा ख़तरे से ख़ाली नहीं थी। अर्थात यह प्रतिबन्ध नहीं है कि यदि मार्ग में भय हो तो क़स्र की आज्ञा है। क्योंकि क़ुरआन करीम के अन्य स्थानों पर इसी प्रकार के प्रतिबन्धों का वर्णन है जो सामयिक रूप से ऐसा सम्भव हो सकता है। जैसे "तुम अपनी दासियों को व्याभिचार के लिए बाध्य न करो, यदि वह इससे बचना चाहें" चूँकि वह बचना चाहती थीं इसलिए अल्लाह तआला ने वर्णन किया अन्यथा इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि यदि वह तैयार हों, तो तुम्हारे लिए उचित है कि तुम उनसे कुकर्म करवा लिया करो। इसी प्रकार पूर्व में सूर: आले इमरान की आयत संख्या १३० तथा इसके पश्चात इसी सूर: अन-निसा की आयत संख्या २३ तथा सूर: अन-नूर की आयत संख्या ३३ आदि आयतों में आया है। कुछ सहाबा के विचार में आया कि अब तो शान्ति

وَإِذَا كُنتَ فِيهِمْ فَأَقَمْتَ لَهُمُ الصَّلَوٰةَ فَلْتَقُمْ طَآئِفَةٌ مِّنْهُم مَّعَكَ وَلْيَأْخُذُوٓا أَسْلِحَتَهُمْ فَإِذَا سَجَدُوا فَلْيَكُونُوا مِن وَرَآئِكُمْ وَلْتَأْتِ طَآئِفَةٌ أُخْرَىٰ لَمْ يُصَلُّوا فَلْيُصَلُّوا مَعَكَ وَلْيَأْخُذُوا حِذْرَهُمْ وَأَسْلِحَتَهُمْ وَدَّ الَّذِينَ كَفَرُوا لَوْ تَغْفُلُونَ عَنْ أَسْلِحَتِكُمْ وَأَمْتِعَتِكُمْ فَيَمِيلُونَ عَلَيْكُم مَّيْلَةً وَاحِدَةً وَلَا جُنَاحَ

(१०२) और जब आप उनमें हों और उनके लिए नमाज़ की स्थापना करें तो चाहिए कि उनका एक गुट आप के साथ हथियार लिए खड़ा हो, फिर जब यह सजदा कर चुकें तो यह हट कर तुम्हारे पीछे आ जायें और दूसरा गुट जिसने नमाज़ नहीं पढ़ी है, वह आ जाये और तेरे साथ नमाज़ अदा करे और अपना बचाव तथा अपने हथियार लिए रहे, काफ़िर चाहते हैं कि तुम किसी प्रकार अपने हथियार तथा अपनी सामग्रियों से असावधान हो जाओ, तो वह तुम पर सहसा आक्रमण कर दें ।[1] और हाँ, अपने हथियार उतार रखने में

है अब यात्रा में क़स्र नमाज़ नहीं पढ़नी चाहिए । नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया, "यह अल्लाह की ओर से तुम लोगों के लिए दान है, उसके दान को स्वीकार करो ।" (मुसनद अहमद, भाग १ पृष्ठ २५-३६, सहीह मुस्लिम किताबुल मुसाफ़िरीन तथा अन्य हदीस की पुस्तकों में)

टिप्पणी : यात्रा की दूरी तथा क़स्र के दिनों के निर्धारण में मतभेद है । इमाम शौकानी ने तीन फ़रसख़ अर्थात ९ कोस वाले कथन को प्राथमिकता दी है । (नैलुल औतार, भाग ३, पृष्ठ २२०) । इसी प्रकार अन्य विशेषज्ञों का विचार है कि यह आवश्यक है कि किसी स्थान पर यात्रा के समय तीन या चार दिन से अधिक निवास करने का विचार न करे अथवा यदि इससे अधिक दिन निवास करने का विचार हो तो क़स्र नमाज़ न पढ़नी चाहिए । (विस्तार पूर्वक जानकारी के लिए देखें मिर्आतुल मफ़ातीह)

[1]इस आयत में सलातुल ख़ौफ़ (भय के समय की नमाज़) की आज्ञा, अपितु आदेश दिया जा रहा है । सलातुल ख़ौफ़ का अर्थ है भय की नमाज़ । यह उस समय का धार्मिक नियम है, जब मुसलमान तथा काफ़िरों की सेनायें आमने-सामने युद्ध के लिए तैयार खड़ी हों तथा एक क्षण की भी उपेक्षा मुसलमानों के लिए अत्यधिक हानिकारक सिद्ध हो सकती है । ऐसे समय में यदि नमाज़ का समय आ जाये तो सलातुल ख़ौफ़ का आदेश है । जिसके विभिन्न रूपों का वर्णन हदीस में है जैसे : सेना दो भागों में विभाजित हो गयी, एक भाग शत्रु का सामना करने के लिए खड़ा रहा, ताकि काफ़िरों को आक्रमण करने का साहस न हो, और दूसरे भाग ने नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के साथ नमाज़ पढ़ी, जब यह भाग नमाज़ पढ़ चुका तो पहले के स्थान पर

عَلَيْكُمْ إِنْ كَانَ بِكُمْ أَذًى مِّنْ مَّطَرٍ أَوْ كُنْتُمْ مَّرْضَىٰ أَنْ تَضَعُوٓا أَسْلِحَتَكُمْ ۖ وَخُذُوا حِذْرَكُمْ ۗ إِنَّ اللَّهَ أَعَدَّ لِلْكَافِرِينَ عَذَابًا مُّهِينًا ﴿١٠٢﴾

उस समय तुम पर कोई दोष नहीं, जबकि तुम कष्ट में हो अथवा वर्षा के कारण अथवा रोग होने के कारण एवं अपनी बचाव सामग्री साथ में लिये रखो। नि:संदेह अल्लाह तआला ने नकारने वालों के लिए अपमान का दण्ड तैयार कर रखा है।

فَإِذَا قَضَيْتُمُ الصَّلَاةَ فَاذْكُرُوا اللَّهَ قِيَامًا وَقُعُودًا وَعَلَىٰ جُنُوبِكُمْ ۚ فَإِذَا اطْمَأْنَنْتُمْ فَأَقِيمُوا الصَّلَاةَ ۚ

(१०३) फिर जब तुम नमाज़ पढ़ चुको तो उठते तथा बैठते एवं लेटते अल्लाह (तआला) का वर्णन करते रहो,[1] और शांति प्राप्त हो तो नमाज़ स्थापित करो, अवश्य[2] नमाज़

मोर्चा लेने के लिए आ खड़ा हुआ। कुछ कथनों में आता है कि आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने दोनों भागों को एक-एक रकअत नमाज़ पढ़ायी, इस प्रकार आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की दो रकआतें और शेष सैनिकों की एक-एक रकअत हुई। कुछ में आता है कि दो-दो रकआतें पढ़ायीं, इस प्रकार आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की चार रकआत तथा शेष सैनिकों की दो-दो रकआतें हुईं और कुछ में आता है कि आप एक रकअत के पश्चात तहीयात की तरह बैठे रहे, सैनिकों ने खड़े होकर एक रकअत और पढ़ कर दो रकआतें पूरी कीं और शत्रु के समक्ष जाकर डट गये, दूसरे भाग ने आकर नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के पीछे नमाज़ पढ़ी, आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने उन्हें भी एक रकअत नमाज़ पढ़ायी और तहीयात में बैठ गये और उस समय तक बैठे रहे जब तक सैनिकों ने दूसरी रकअत पूरी न कर ली। फिर उनके साथ आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने सलाम फेर दिया। इस प्रकार आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की भी दो रकआत तथा सेना के दोनों भागों की भी दो रकआतें हुईं। (देखिये हदीस की किताबें)

[1]तात्पर्य यही भय की नमाज़ है, इसमें चूँकि सुविधा दी गयी है। इसलिए इसको पूर्ति के लिए कहा जा रहा है कि खड़े, बैठे, लेटे अल्लाह का वर्णन करते रहो।

[2]इसका तात्पर्य यह है कि जब युद्ध के बादल छँट जायें तो फिर नमाज़ को उसके उसी विधि के अनुसार पढ़ना है, जो सामान्य अवस्था में पढ़ी जाती है।

إِنَّ الصَّلَوٰةَ كَانَتْ عَلَى الْمُؤْمِنِينَ كِتَٰبًا مَّوْقُوتًا ﴿١٠٣﴾

मुसलमानों पर निश्चित तथा निर्धारित समय पर अनिवार्य की गयी है।[1]

وَلَا تَهِنُوا فِي ابْتِغَاءِ الْقَوْمِ ۖ إِن تَكُونُوا تَأْلَمُونَ فَإِنَّهُمْ يَأْلَمُونَ كَمَا تَأْلَمُونَ ۖ وَتَرْجُونَ مِنَ اللَّهِ مَا لَا يَرْجُونَ ۗ وَكَانَ اللَّهُ عَلِيمًا حَكِيمًا ﴿١٠٤﴾

(१०४) और उन लोगों का पीछा करने से आलस्य न करो,[2] यदि तुम्हें कष्ट होता है, तो उन्हें भी कष्ट होता है, और तुम अल्लाह (तआला) से वह आशायें रखते हो जो उन्हें नहीं,[3] और अल्लाह (तआला) ज्ञाता-विज्ञाता है।

إِنَّا أَنزَلْنَا إِلَيْكَ الْكِتَٰبَ بِالْحَقِّ لِتَحْكُمَ بَيْنَ النَّاسِ بِمَا أَرَاكَ اللَّهُ ۚ وَلَا تَكُن لِّلْخَائِنِينَ خَصِيمًا ﴿١٠٥﴾

(१०५) निःसंदेह, हमने तुम्हारी ओर सत्य शास्त्र उतारा है, ताकि तुम लोगों के बीच उसके अनुसार न्याय करो जिससे अल्लाह (तआला) ने तुम्हें अवगत कराया।[4] और विश्वासघात

---

[1]इसमें नमाज़ को निर्धारित समय से पढ़ने पर बल दिया जा रहा है, जिससे ज्ञात होता है कि धार्मिक कारणों के बिना दो नमाज़ों को एकत्रित करना सही नहीं है, क्योंकि इस प्रकार कम से कम एक नमाज़ अपने निर्धारित समय पर नहीं पढ़ी जायेगी, जो इस आयत के विपरीत है।

[2]अर्थात अपने शत्रु का पीछा करने में कमज़ोरी मत दिखाओ, अपितु उनके विरोध में कठोर प्रयत्न करो और घात लगाकर बैठो।

[3]अर्थात घाव तो तुम्हें भी और उन्हें भी दोनों को लगे हैं परन्तु इन घावों के प्रतिफल में तुम्हें तो अल्लाह से आशायें हैं, परन्तु वह उसकी आशा नहीं रखते। इसलिए आख़िरत (परलोक) के प्रतिकार को प्राप्त करने के लिए जो प्रयास तुम कर सकते हो, वह काफ़िर नहीं कर सकते।

[4]इन आयतों (१०४ से ११३ तक) के उतरने की विशेषता में बतलाया गया है कि अन्सार के क़बीले बनी ज़ुफर में एक व्यक्ति तोअमः अथवा बशीर बिन उबैरिक़ ने एक अंसारी का कवच चुरा लिया, जब इसकी चर्चा हुई और उसको अपनी चोरी खुलने का भय हुआ तो उसने वह कवच एक यहूदी के घर में फेंक दी और बनी ज़ुफर के कुछ व्यक्तियों को लेकर नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की सेवा में उपस्थित हुआ और

करने वालों के पक्षधर न बनो ।[1]

(१०६) और अल्लाह (तआला) से क्षमा माँगो,[2] नि:संदेह अल्लाह तआला क्षमाशील कृपानिधि है ।

وَّاسْتَغْفِرِ اللّٰهَ ۭ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا

उन सभी ने कहा कि कवच का चोर अमुक यहूदी है । यहूदी नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की सेवा में उपस्थित हुआ और उसने कहा कि बनी उबैरिक ने कवच चोरी करके मेरे घर में फेंक दिया है । बनी जुफर तथा बनी उबैरिक (तुअम: अथवा बशीर आदि) चतुर थे और नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को यह विश्वास दिलाते रहे कि चोर यहूदी ही है । और वह तोअम: पर अभियोग लगाने में झूठा है । नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम भी उनकी चिकनी बातों से प्रभावित हो गये और निकट था कि अन्सारी को चोरी के अभियोग से निर्दोष और यहूदी को चोरी का अपराधी घोषित कर देते कि अल्लाह तआला ने यह आयत उतारी । जिससे एक बात यह ज्ञात हुई कि नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम एक मनुष्य होने के कारण भ्रम में पड़ सकते हैं । दूसरी बात यह ज्ञात हुई कि आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम परोक्षज्ञ नहीं थे अन्यथा आप तुरंत वास्तविकता जान लेते । तीसरी बात यह ज्ञात हुई कि अल्लाह तआला अपने पैग़म्बर की रक्षा करता है, और यदि कभी भी सत्य के छिपे रह जाने तथा उससे भटकने की स्थिति आ जाये, तो तुरन्त अल्लाह तआला उसे सावधान कर देता और उसकी सुधार कर देता है जैसाकि नबियों के चरित्र की विशेषता है । यह निर्दोषता का वह सर्वोच्च स्थान है, जो नबियों के अतिरिक्त किसी को प्राप्त नहीं है ।

[1]इसका अर्थ भी वही बनी उबैरिक हैं । जिन्होंने चोरी स्वयं की, परन्तु अपनी वाक्पटुता के कारण यहूदी को चोर सिद्ध करने पर अड़े हुए थे । अगली आयत में भी उनके तथा उनके पक्षधरों के कुचक्र को और स्पष्ट करके नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को सावधान किया जा रहा है ।

[2]अर्थात बिना तहक़ीक़ के आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने जो विश्वासघातियों का समर्थन किया है उस पर अल्लाह तआला से क्षमा माँगें । इससे ज्ञात हुआ कि दोनों पक्षों के विषय में जब तक पूर्ण विश्वास न हो कि सत्य पर कौन है, उसका पक्षपात तथा समर्थन उचित नहीं । इसके अतिरिक्त यदि कोई व्यक्ति अपने वाक्पटुता से तथा धोखा देकर न्यायालय अथवा सामयिक न्यायाधीश से अपने पक्ष में निर्णय करा ले, यद्यपि वह सत्य पर नहीं था तो ऐसे निर्णय का अल्लाह के समक्ष कोई महत्व नहीं है । इस बात को नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने इस प्रकार वर्णित किया है "सावधान" ! मैं एक मनुष्य ही हूँ और जिस प्रकार सुनता हूँ, उसी के प्रकाश में निर्णय करता हूँ । सम्भव है कि एक व्यक्ति अपने तर्क-वितर्क प्रस्तुत करने में निपुण तथा चालाक हो

(१०७) और उनकी ओर से झगड़ा न करो जो स्वयं अपना ही विश्वासघात करते हैं। नि:संदेह धोखेबाज़ पापी अल्लाह (तआला) को अच्छा नहीं लगता।

وَلَا تُجَادِلْ عَنِ الَّذِينَ يَخْتَانُونَ أَنفُسَهُمْ ۚ إِنَّ اللَّهَ لَا يُحِبُّ مَن كَانَ خَوَّانًا أَثِيمًا ﴿١٠٧﴾

(१०८) वह लोगों से तो छुप जाते हैं, परन्तु अल्लाह से नहीं छुप सकते, वह उनके साथ है जब कि वे रात्रि में अप्रिय कथन की योजना बनाते हैं तथा अल्लाह उनकी कृतियों को घेरे हुये है।

يَسْتَخْفُونَ مِنَ النَّاسِ وَلَا يَسْتَخْفُونَ مِنَ اللَّهِ وَهُوَ مَعَهُمْ إِذْ يُبَيِّتُونَ مَا لَا يَرْضَىٰ مِنَ الْقَوْلِ ۚ وَكَانَ اللَّهُ بِمَا يَعْمَلُونَ مُحِيطًا ﴿١٠٨﴾

(१०९) हाँ, यह तुम लोग हो जो उनके पक्ष में दुनिया में लड़े, किन्तु प्रलय के दिन उन की ओर से अल्लाह से कौन बहस करेगा तथा कौन उनका वकील बनकर खड़ा होगा।[1]

هَا أَنتُمْ هَٰؤُلَاءِ جَادَلْتُمْ عَنْهُمْ فِي الْحَيَاةِ الدُّنْيَا فَمَن يُجَادِلُ اللَّهَ عَنْهُمْ يَوْمَ الْقِيَامَةِ أَم مَّن يَكُونُ عَلَيْهِمْ وَكِيلًا ﴿١٠٩﴾

(११०) तथा जो भी कोई बुराई करे अथवा स्वयं अपने ऊपर अत्याचार करे फिर अल्लाह से क्षमा माँगे तो अल्लाह को क्षमाशील दयानिधि पायेगा।

وَمَن يَعْمَلْ سُوءًا أَوْ يَظْلِمْ نَفْسَهُ ثُمَّ يَسْتَغْفِرِ اللَّهَ يَجِدِ اللَّهَ غَفُورًا رَّحِيمًا ﴿١١٠﴾

(१११) और जो पाप करता है उसका बोझ उसी पर है,[2] तथा अल्लाह सर्वज्ञ विज्ञाता है।

وَمَن يَكْسِبْ إِثْمًا فَإِنَّمَا يَكْسِبُهُ عَلَىٰ نَفْسِهِ ۚ وَكَانَ اللَّهُ عَلِيمًا حَكِيمًا ﴿١١١﴾

और मैं उसके वार्तालाप से प्रभावित होकर उसके पक्ष में निर्णय कर दूँ, यद्यपि वह सत्य पर नहीं हो और इस प्रकार किसी दूसरे मुसलमान का अधिकार उसे दे दूँ, तो उसे याद रखना चाहिए कि यह आग का टुकड़ा है। यह उसकी इच्छा है कि उसे ले अथवा त्याग दे। (सहीह बुख़ारी, किताबुश शाहादः वल हेयल वल अहकाम, सहीह मुस्लिम किताबुल अक़्ज़ीय:)

[1]अर्थात जब इस पाप के कारण उसकी पकड़ होगी, तो कौन अल्लाह की पकड़ से उसे बचा सकेगा?

[2]इस विषय की दूसरी आयत में अल्लाह तआला फ़रमाता है :

(११२) तथा जो कोई दोष अथवा पाप करता है फिर किसी निर्दोष पर थोप देता है, उस ने खुला आरोप तथा घोर पाप किया ।[1]

وَمَنْ يَكْسِبْ خَطِيْئَةً اَوْ اِثْمًا ثُمَّ يَرْمِ بِهٖ بَرِيْٓـًٔا فَقَدِ احْتَمَلَ بُهْتَانًا وَّاِثْمًا مُّبِيْنًا ﴿١١٢﴾

(११३) और यदि आप पर अल्लाह की दया एवं कृपा न होती तो उनके एक गुट ने आपको विपथ करने का षड्यन्त्र रच लिया था[2] किन्तु वह स्वयं को विपथ करते हैं तथा वह आपको कोई हानि नहीं पहुंचा सकते और अल्लाह ने आप पर किताब तथा ज्ञान उतारा है और आप जिसको नहीं जानते थे उसका ज्ञान[3] दिया है तथा आप पर अल्लाह की भारी अनुकम्पा है ।

وَلَوْلَا فَضْلُ اللّٰهِ عَلَيْكَ وَرَحْمَتُهٗ لَهَمَّتْ طَّآئِفَةٌ مِّنْهُمْ اَنْ يُّضِلُّوْكَ ؕ وَمَا يُضِلُّوْنَ اِلَّآ اَنْفُسَهُمْ وَمَا يَضُرُّوْنَكَ مِنْ شَيْءٍ ؕ وَاَنْزَلَ اللّٰهُ عَلَيْكَ الْكِتٰبَ وَالْحِكْمَةَ وَعَلَّمَكَ مَا لَمْ تَكُنْ تَعْلَمُ ؕ وَكَانَ فَضْلُ اللّٰهِ عَلَيْكَ عَظِيْمًا ﴿١١٣﴾

﴿وَلَا تَزِرُ وَازِرَةٌ وِّزْرَ اُخْرٰى﴾

"कोई बोझ उठाने वाला किसी दूसरे का बोझ नहीं उठायेगा ।" (सूर: *बनी इस्राईल-१५*)

अर्थात कोई किसी का उत्तरदायी नहीं होगा, प्रत्येक व्यक्ति को वही कुछ मिलेगा, जो कमा कर साथ ले गया होगा ।

[1]जिस प्रसार बनू उबैरिक ने किया कि चोरी तो स्वयं की और आरोप किसी अन्य पर लगा दिया । यह डांट फटकार सामान्य है, जिसमें बनू उबैरिक भी सम्मिलित है और उनको भी जो इस प्रकार के दुराचरणों में लीन होंगे ।

[2]यह अल्लाह तआला की उस विशेष रक्षा का वर्णन है जिसका प्रबन्ध नबियों के लिए किया जाता है जो नबियों पर अल्लाह की विशेष कृपा तथा विशेष दया का दर्पण है । طائفة (तायेफ:) (गुट) से तात्पर्य वह लोग हैं जो बनू उबैरिक के समर्थन में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की सेवा में उनकी सफाई प्रस्तुत कर रहे थे, जिससे यह अनुमान हो चला था कि नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम उस व्यक्ति को चोरी के अपराध से मुक्त कर देंगे, जो वास्तव में चोर था ।

[3]यह दूसरी अनुकम्पा तथा अनुग्रह का वर्णन है, जो आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम पर धर्मशास्त्र (पवित्र कुरआन) तथा हदीस (सुन्नत) उतारकर आवश्यक बातों का ज्ञान देकर बताया गया । जिस प्रकार दूसरे स्थान पर फ़रमाया :

لَا خَيْرَ فِي كَثِيرٍ مِّن نَّجْوَاهُمْ إِلَّا مَنْ أَمَرَ بِصَدَقَةٍ أَوْ مَعْرُوفٍ أَوْ إِصْلَاحٍ بَيْنَ النَّاسِ ۚ وَمَن يَفْعَلْ ذَٰلِكَ ابْتِغَاءَ مَرْضَاتِ اللَّهِ فَسَوْفَ نُؤْتِيهِ أَجْرًا عَظِيمًا ﴿١١٤﴾

(११४) उनकी अधिकांश कानाफूसी में कोई भलाई नहीं,[1] परन्तु जिसने उपकार अथवा भलाई अथवा लोगों के बीच सुधार के लिये आदेश दिया[2] तथा जो यह कार्य अल्लाह की प्रसन्नता की खोज हेतु करेगा[3] हम उसे वास्तव में बहुत बड़ा प्रतिकार (बदला) देंगे ।[4]

﴿وَكَذَٰلِكَ أَوْحَيْنَا إِلَيْكَ رُوحًا مِّنْ أَمْرِنَا ۚ مَا كُنتَ تَدْرِي مَا الْكِتَابُ وَلَا الْإِيمَانُ﴾

"इसी प्रकार भेजा हमने तेरी ओर (क़ुरआन लेकर) एक फ़रिश्ते को अपने आदेश से, तू नहीं जानता था कि किताब क्या है और ईमान क्या है ?" (सूर: *अल-शूरा:-५२*)

﴿وَمَا كُنتَ تَرْجُو أَن يُلْقَىٰ إِلَيْكَ الْكِتَابُ إِلَّا رَحْمَةً مِّن رَّبِّكَ﴾

"और तुझे यह आशा नहीं थी कि तुझ पर किताब उतारी जायेगी, परन्तु तेरे प्रभु की कृपा से (यह किताब उतारी गयी)" (सूर: *अल-क़सस-८६*)

इन सभी आयतों (पवित्र क़ुरआन के सूत्रों) से यह ज्ञात हुआ कि अल्लाह ने आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम पर कृपा तथा उपकार किया तथा किताब एवं विवेक दिया, इनके अतिरिक्त अन्य बहुत सी बातों का ज्ञान आप (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को प्रदान किया गया, जिनसे आप सल्लल्लाह अलैहि वसल्लम अनभिज्ञ थे । यह भी एक प्रकार से आपके परोक्षज्ञ (अन्तर्यामी) होने का इंकार है, क्योंकि यदि आपको परोक्ष का ज्ञान होता, तो आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को किसी अन्य से विद्या ग्रहण की क्या आवश्यकता थी । और जिसे दूसरों से ज्ञान प्राप्त हो, वह्‌यी (ईशवाणी) के द्वारा अथवा अन्य किसी साधन द्वारा, तो वह परोक्ष का ज्ञानी नहीं हो सकता ।

[1] نجوى (नजवा) (गुप्त मंत्रणा) से तात्पर्य वह बातें हैं जो अवसरवादी आपस में मुसलमानों के विरूद्ध अथवा एक-दूसरे के विरूद्ध करते थे ।

[2]अर्थात दान-पुण्य, भलाई (जो हर प्रकार के पुण्य को सम्मिलित है) तथा लोगों के बीच सुधार करने के विषय में परामर्श, पुण्य पर आधारित हैं । जैसाकि इन कार्यों की विशेषता तथा महत्व पर हदीस में भी बल दिया गया है ।

[3]क्योंकि यदि नि:स्वार्थता (अर्थात अल्लाह की प्रसन्नता का उद्देश्य) नहीं होगा, तो बड़े से बड़ा कर्म भी व्यर्थ जायेगा, बल्कि आपत्ति बन जायेगा । परमेश्वर हमें पाखण्ड तथा दिखावे के काम से बचाये ।

[4]हदीसों में वर्णित कर्मों का बड़ा महत्व है । अल्लाह के मार्ग में उचित की कमाई से एक खजूर दान करने का पुण्य ओहद पर्वत की मात्रा में होगा । (सहीह मुस्लिम

(११५) और जो सत्य मार्ग के स्पष्ट होने के पश्चात रसूल (मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का विरोध करेगा तथा मुसलमानों के मार्ग के सिवाय खोज करेगा, हम उसे उसी ओर जिस ओर वह फिरता हो फेर देंगे, फिर हम उसे नरक में झोंक[1] देंगे तथा वह अति बुरा स्थान है।

وَمَنْ يُشَاقِقِ الرَّسُولَ مِنْ بَعْدِ مَا تَبَيَّنَ لَهُ الْهُدَىٰ وَيَتَّبِعْ غَيْرَ سَبِيلِ الْمُؤْمِنِينَ نُوَلِّهِ مَا تَوَلَّىٰ وَنُصْلِهِ جَهَنَّمَ ۖ وَسَاءَتْ مَصِيرًا ﴿١١٥﴾

किताबुल ज़कात) सत्य बात के प्रचार करने का भी बहुत बड़ा महत्व है। इसी प्रकार सम्बन्धियों, मित्रों तथा अपसी कटुता के कारण अलग हुए लोगों में सन्धि करा देना बहुत बड़ा कर्म है। एक हदीस में इसे ऐच्छिक व्रत (रोजों), ऐच्छिक नमाज़ों तथा ऐच्छिक दान से भी श्रेष्ठ बताया गया है। फ़रमाया :

«أَلَا أُخْبِرُكُمْ بِأَفْضَلَ مِنْ دَرَجَةِ الصِّيَامِ وَالصَّلَاةِ وَالصَّدَقَةِ؟» قَالُوا بَلَىٰ: قال: «إِصْلَاحُ ذَاتِ الْبَيْنِ، قال ـ: وفَسَادُ ذاتِ الْبَيْنِ هِيَ الْحَالِقَةُ».

"क्या मैं तुमको नमाज़, रोज़ा और दान से श्रेष्ठ कार्य न बता दूँ। उन्होंने कहा, अवश्य। आपने कहा आपसी कटुता के कारण अलग हुए लोगों में सन्धि करा देना।" (अबू दाऊद, किताबुल अदब, त्रिमिज़ी किताबुल बिर्र तथा मुसनद अहमद ६/४४४ से ४४५ तक)

यहाँ तक कि संधि कराने वाले को झूठ बोलने तक की आज्ञा प्रदान की गयी है। ताकि उसे एक-दूसरे को निकट लाने के लिए किसी कारणवश इसकी आवश्यकता पड़े, तो वह इसे भी प्रयोग करे।

«لَيْسَ الْكَذَّابُ الَّذِي يُصْلِحُ بَيْنَ النَّاسِ، فَيَنْمِي خَيْراً أَوْ يَقُولُ خَيْراً».

"वह मिथ्यावादी नहीं जो एक कराने के लिये अच्छी बात फैलाता अथवा अच्छी बात करता है।" (अल-बुख़ारी किताबुल सुलह, मुस्लिम तथा अल-त्रिमिज़ी किताबुल बिर्र, अबूदाऊद किताबुल अदब)

[1]मार्गदर्शन के प्रकाशित हो जाने के पश्चात रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का विरोध तथा मुसलमानों का मार्ग छोड़ कर किसी अन्य के मार्ग का अनुसरण इस्लाम में से निकलना है। जिस पर यहाँ नरक की धमकी दी गयी है। मुसलमानों से तात्पर्य नबी के सहचर (رضي الله عنهم) हैं, जो इस्लाम धर्म के प्रथम अनुयायी और उसकी शिक्षाओं के पूर्णरूपण आदर्श थे। और इन आयतों के उतरने के समय कोई अन्य मुसलमानों का गुट नहीं था कि उनका आशय हो। इसीलिए रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु

إِنَّ اللَّهَ لَا يَغْفِرُ أَن يُشْرَكَ بِهِ وَيَغْفِرُ مَا دُونَ ذَٰلِكَ لِمَن يَشَاءُ ۚ وَمَن يُشْرِكْ بِاللَّهِ فَقَدْ ضَلَّ ضَلَالًا بَعِيدًا ﴿١١٦﴾

(११६) अल्लाह अपने साथ मिश्रण किये जाने को कदापि क्षमा नहीं करेगा और इसके सिवाय (पापों) को जिसके लिये चाहे क्षमा कर देगा तथा जिसने अल्लाह के साथ मिश्रण (शिर्क) किया वह बहुत दूर बहक गया।

إِن يَدْعُونَ مِن دُونِهِ إِلَّا إِنَاثًا وَإِن يَدْعُونَ إِلَّا شَيْطَانًا مَّرِيدًا ﴿١١٧﴾

(११७) यह तो अल्लाह (तआला) को छोड़कर केवल देवियों को पुकारते हैं।[1] और वास्तव में यह दुष्ट शैतान को पुकारते हैं।[2]

अलैहि वसल्लम का विरोध तथा नि:स्वार्थी मुसलमानों के मार्ग के अन्य का अनुगमन दोनों वास्तव में एक ही वस्तु के नाम हैं। इसलिए सहाबा कराम (رضي الله عنهم) के मार्ग तथा विधि का विरोध ही अविश्वास तथा विपथ है। कुछ विद्वानों ने ईमानवालों के रास्ते से तात्पर्य सम्पूर्ण उम्मत लिया है अर्थात सम्पूर्ण उम्मत से विरोध भी अधर्म है। सम्पूर्ण उम्मत से तात्पर्य है कि किसी समस्या पर उम्मत के सभी विद्वानों तथा ज्ञानियों की सहमति। अथवा किसी समस्या पर सहाबा कराम (رضي الله عنهم) की सहमति यह दोनों परस्थितियाँ उम्मत की सहमती के रूप हैं तथा दोनों से इंकार अथवा उनमें से किसी एक का इंकार अधर्म है। फिर भी सहाबा कराम (رضي الله عنهم) की सहमति बहुत सी समस्यायों पर मिलती है, अर्थात सहमति की यह स्थिति तो मिलती है। परन्तु सहाबा की सर्वसम्मति के पश्चात किसी समस्या पर सम्पूर्ण उम्मत के एकमत तथा सहमती के दावे बहुत सी समस्याओं में किये गये हैं, परन्तु वास्तव में सर्वसम्मत समस्यायें बहुत ही कम हैं, जिनमें वास्तव में उम्मत के सभी आलिमों तथा ज्ञानियों की सहमति हो। फिर भी इस प्रकार की जो समस्यायें भी हैं, उनका इंकार भी सहाबा की सहमति की इंकार की तरह कुफ्र है। इसलिए कि सहीह हदीसों में है, "अल्लाह तआला मेरी उम्मत को भटकावे पर एकमत नहीं करेगा और सहमत पर अल्लाह का हाथ है।" (सहीह त्रिमिज़ी, लिल अलबानी भाग २, संख्या १७५९)

[1] إناث (इनास) (स्त्रियों) से तात्पर्य या तो मूर्तियाँ हैं, जिनके नाम स्त्रीलिंग में थे। जैसे لات (लात), عزى (उज़्ज़ा), مناة (मनात) तथा نائلة (नायेल:) आदि। अथवा तात्पर्य फ़रिश्ते हैं, क्योंकि अरब के मूर्तिपूजक फ़रिश्तों को अल्लाह की पुत्रियाँ समझते थे और उनकी पूजा करते थे।

[2]मूर्ति, फ़रिश्तों तथा अन्य लोगों की पूजा वास्तव में शैतान की पूजा है क्योंकि शैतान ही मनुष्य को अल्लाह के द्वार से बहका कर अन्य के दरबार में तथा चौखट पर झुकाता है, जैसा कि अगली आयत में है।

(११८) जिसे अल्लाह (तआला) ने धिक्कारा है । और उसने कहा है कि तेरे भक्तों में से मैं निर्धारित भाग ले कर रहूँगा ।[1]

لَّعَنَهُ اللَّهُ ۘ وَقَالَ لَأَتَّخِذَنَّ مِنْ عِبَادِكَ نَصِيبًا مَّفْرُوضًا ﴿١١٨﴾

(११९) और उन्हें राह से भटकाता रहूँगा और झूठी आशायें दिलाता रहूँगा[2] और उन्हें शिक्षा दूँगा कि पशुओं के कान चीरें[3] और उनसे कहूँगा कि अल्लाह का बनाया रूप बिगाड़ दें ।[4] सुनो, जो अल्लाह को छोड़ कर शैतान

وَلَأُضِلَّنَّهُمْ وَلَأُمَنِّيَنَّهُمْ وَلَآمُرَنَّهُمْ فَلَيُبَتِّكُنَّ آذَانَ الْأَنْعَامِ وَلَآمُرَنَّهُمْ فَلَيُغَيِّرُنَّ خَلْقَ اللَّهِ ۚ وَمَن يَتَّخِذِ الشَّيْطَانَ وَلِيًّا مِّن دُونِ اللَّهِ فَقَدْ

---

[1] "निर्धारित भाग" से तात्पर्य भोग-प्रसाद (नजर-नियाज़) भी हो सकता है, जो मूर्तिपूजक, क़ब्रों (समाधियों) में दफ़न (गड़े) व्यक्ति के नाम पर निकालते हैं तथा नरकवासियों का वह भाग भी हो सकता है, जिन्हें शैतान भटका कर अपने साथ नरक में ले जायेगा ।

[2] यह वह झूठी आशायें हैं, जो शैतान के प्रलोभन तथा हस्तक्षेप से उत्पन्न होती हैं और मनुष्यों के भटकावे का कारण बनती हैं ।

[3] यह بحيرة (बहीर:) तथा سائبة (सायब:) पशुओं के चिन्ह तथा रूप हैं । मिश्रणवादी उनको मूर्तियों के नाम से दान कर देते थे, तो पहचान के लिए कान आदि चीर दिया करते थे ।

[4] अल्लाह की सृष्टि में परिवर्त्तन के कई रूप वर्णन किये गये हैं । एक तो यही, जिसका वर्णन यहाँ हुआ अर्थात कान आदि काटना, चीरना, छेदना, इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार के रूप हैं । जैसे अल्लाह तआला ने चाँद, सूरज, पत्थर तथा अग्नि आदि पदार्थ विभिन्न उद्देश्य से बनाये हैं, परन्तु मूर्तिपूजकों ने उनके उत्पत्ति के उद्देश्य को बदलकर उनको पूज्य बना लिया । अथवा बदलाव का अर्थ प्रकृति को बदल देना है, अथवा वर्जित तथा अवर्जित में बदलाव आदि हैं । इसी प्रकार बदलाव में पुरूषों की नसबन्दी करना, और उसी प्रकार स्त्रियों के आप्रेशन करके उन्हें जन्म देने से रोकना, सौन्दर्यता के नाम पर भौहों के बाल उखड़वाकर अपनी शक्ल बदलना और गोदने गुदवाना आदि भी सम्मिलित हैं । यह सब शैतानी कार्य हैं इनसे बचाव आवश्यक है । परन्तु पशुओं को बधिया करना कि अधिक लाभ मिले अथवा उनका माँस अधिक अच्छा हो सके अथवा इसी प्रकार का कोई उचित प्रयोजन हो तो ठीक है । इसका समर्थन इससे भी होता है कि नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने बधिया पशु बलि (क़ुर्बानी) में बलि दिये

خَسِرَ خُسْرَانًا مُّبِينًا ﴿١١٩﴾

को अपना मित्र बनायेगा वह खुले घाटे में होगा ।

يَعِدُهُمْ وَيُمَنِّيهِمْ ۖ وَمَا يَعِدُهُمُ الشَّيْطَانُ إِلَّا غُرُورًا ﴿١٢٠﴾

(१२०) वह उनसे (मौखिक) वायदे करता रहेगा और हरे बाग़ दिखाता रहेगा (परन्तु याद रखो) शैतान के जो वायदे उनसे हैं वह पूर्ण रूप से धोखा हैं ।

أُولَٰئِكَ مَأْوَاهُمْ جَهَنَّمُ وَلَا يَجِدُونَ عَنْهَا مَحِيصًا ﴿١٢١﴾

(१२१) यह वह लोग हैं जिन का स्थान नरक है, जहाँ से उन्हें छुटकारा नहीं मिलेगा ।

وَالَّذِينَ آمَنُوا وَعَمِلُوا الصَّالِحَاتِ سَنُدْخِلُهُمْ جَنَّاتٍ تَجْرِي مِن تَحْتِهَا الْأَنْهَارُ خَالِدِينَ فِيهَا أَبَدًا ۖ وَعْدَ اللَّهِ حَقًّا ۚ وَمَنْ أَصْدَقُ مِنَ اللَّهِ قِيلًا ﴿١٢٢﴾

(१२२) और जो ईमान लायें तथा भले कार्य करें, हम उन्हें उन स्वर्गों में ले जायेंगे,जिनके नीचे नदियाँ बह रही हैं, जहाँ वह सदैव रहेंगे । यह है अल्लाह का वचन जो वस्तुत: सत्य है और अल्लाह से अधिक सत्य अपनी बात में कौन हो सकता है ?[1]

لَّيْسَ بِأَمَانِيِّكُمْ وَلَا أَمَانِيِّ أَهْلِ الْكِتَابِ ۗ مَن يَعْمَلْ سُوءًا يُجْزَ

(१२३) तुम्हारी आकाँक्षाओं तथा अहले किताब की आकांक्षाओं से कुछ नहीं होना है, जो

हैं । यदि पशुओं का बधिया करना उचित न होता तो आप सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम उनकी वलि न देते ।

[1]शैतानी वायदे तो खुला धोखा हैं, लेकिन इसके सापेक्ष अल्लाह तआला ने जो वचन ईमानवालों को दिये हैं सच्चे तथा यथार्थ हैं । और अल्लाह तआला से अधिक सच्चा कौन हो सकता है ? परन्तु मनुष्य की बात ही विचित्र है, यह सत्यवादियों की बात कम मानता है और झूठों के पीछे अधिक चलता है । अत: आप देख लीजिए शैतानी प्रचलन अधिक हैं और अल्लाह के आदेशों के अनुगामी प्रत्येक काल तथा स्थान पर कम ही रहे हैं ।

"و قليل من عبادى الشكور"

"तथा मेरे कृतज्ञ भक्त अति अल्प हैं ।" (सूर: *सबा*-१३)

بِهٖ وَلَا يَجِدْ لَهٗ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ وَلِيًّا وَّلَا نَصِيْرًا ﴿١٢٣﴾

बुरा करेगा उसका दंड पायेगा और अल्लाह के सिवाय अपना कोई संरक्षक एवं सहायक नहीं पायेगा।

وَمَنْ يَّعْمَلْ مِنَ الصّٰلِحٰتِ مِنْ ذَكَرٍ اَوْ اُنْثٰى وَهُوَ مُؤْمِنٌ فَاُولٰٓئِكَ يَدْخُلُوْنَ الْجَنَّةَ وَلَا يُظْلَمُوْنَ نَقِيْرًا ﴿١٢٤﴾

(१२४) और जो ईमानवाला हो पुरुष हो अथवा स्त्री और वह सत्कर्म करे, निःसंदेह इस प्रकार के लोग स्वर्ग में जायेंगे और खजूर की गुठली की फाँक के समान भी उसका अधिकार नहीं मारा जायेगा।[1]

وَمَنْ اَحْسَنُ دِيْنًا مِّمَّنْ اَسْلَمَ وَجْهَهٗ لِلّٰهِ وَهُوَ مُحْسِنٌ وَّاتَّبَعَ مِلَّةَ اِبْرٰهِيْمَ حَنِيْفًا ؕ وَاتَّخَذَ اللّٰهُ اِبْرٰهِيْمَ خَلِيْلًا ﴿١٢٥﴾

(१२५) और उस से उत्तम धर्म वाला कौन हो सकता है जो अल्लाह के प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण कर दे और वह सदाचारी भी हो, और इब्राहीम के धर्म का अनुसरण किया हो जो एकाग्रचित्त थे तथा इब्राहीम को अल्लाह ने अपना मित्र बना लिया है।[2]

---

[1]जैसाकि पहले गुज़र चुका है कि अहले किताब अपने विषय में बड़ी शुभ आशाओं में मग्न थे। यहाँ अल्लाह तआला ने उनकी शुभ आशाओं पर से पर्दा उठाते हुए पुनः फ़रमाया कि आख़िरत की सफलतायें मात्र आशाओं तथा आकांक्षाओं से प्राप्त नही होंगी। इसके लिए ईमान तथा सत्कर्म का कोष होना आवश्यक है। यदि इसके विपरीत कर्मों की सूची में बुराईयाँ होंगी तो उसका दंड भुगतना ही पड़ेगा। वहाँ कोई मित्र तथा सहायक नही होगा, जो बुराई के दण्ड से बचा सके। आयत में अहले किताब के साथ-साथ ईमानवालों को भी अल्लाह तआला ने सम्बोधित किया है, ताकि वह भी यहूदियों तथा ईसाईयों की भाँति शुभ आशाओं, भ्रम तथा कर्मविहीन आशाओं तथा आकांक्षाओं से अपना दामन बचा सकें। परन्तु अफ़सोस, मुसलमान इन चेतावनियों के पश्चात भी उन्हीं कुविचारों में विलीन हो गये जिनमें पूर्व के समुदाय डूब गये थे। और आज अकर्म तथा कुकर्म मुसलमान का भी प्रतीक बना हुआ है और इसके उपरान्त वह "उम्मते मरहूमा" कहलाने का पुनराग्रह कर रहा है। هدانا الله تعالى

[2]यहाँ सफलता का एक स्तर तथा उसके एक आदर्श का वर्णन किया जा रहा है। पैमाना यह है कि स्वयं को अल्लाह को अर्पण कर दे, परोपकारी बन जाये और इब्राहीम के धर्म का अनुसरण करे। और आदर्श आदरणीय इब्राहीम हैं, जिनको अल्लाह

(१२६) और जो कुछ भी आकाशों तथा पृथ्वी में है अल्लाह का है तथा अल्लाह प्रत्येक वस्तु को घेरने वाला है ।

وَلِلّٰهِ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ ؕ وَكَانَ اللّٰهُ بِكُلِّ شَيْءٍ مُّحِيْطًا ﴿١٢٦﴾

(१२७) वे नारियों के विषय में आप से प्रश्न करते हैं,[1] आप कह दें कि स्वयं अल्लाह तुम्हें उन के विषय में आदेश देता है और जो कुछ किताब (क़ुरआन) में तुम्हारे समक्ष पढ़ा जाता है, उन अनाथ नारियों (लड़कियों) के संदर्भ में जिनको तुम उनका अनिवार्य अधिकार नहीं देते[2] तथा उनसे विवाह करना चाहते हो[3]

وَيَسْتَفْتُوْنَكَ فِي النِّسَآءِ ؕ قُلِ اللّٰهُ يُفْتِيْكُمْ فِيْهِنَّ ۙ وَمَا يُتْلٰى عَلَيْكُمْ فِي الْكِتٰبِ فِيْ يَتٰمَى النِّسَآءِ الّٰتِيْ لَا تُؤْتُوْنَهُنَّ مَا كُتِبَ لَهُنَّ وَتَرْغَبُوْنَ اَنْ تَنْكِحُوْهُنَّ وَالْمُسْتَضْعَفِيْنَ مِنَ الْوِلْدَانِ ۙ وَاَنْ

तआला ने अपना ख़लील बनाया। ख़लील का अर्थ यह है कि जिसके दिल में अल्लाह तआला का प्रेम इस प्रकार बस जाये कि किसी अन्य के लिए उसमें स्थान न रहे। ख़लील (कर्म का रूप है) तथा अर्थ के आधार पर कर्ता है। जैसे अलीम का अर्थ ज्ञानी और कुछ कहते हैं कि कर्म ही के अर्थ में है। जैसे हबीब का अर्थ है महबूब। और आदरणीय इब्राहीम नि:सन्देह अल्लाह के प्रिय भी थे और प्रेमी भी (अलैहिस्सलात वस्सलाम)। (फ़तहुल क़दीर) और नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया है, "अल्लाह ने मुझे भी ख़लील बनाया है, जिस प्रकार उसने आदरणीय इब्राहीम को ख़लील बनाया।" (सहीह मुस्लिम, किताबुल मसाजिद)

[1]स्त्रियों के विषय में जो प्रश्न होते रहते थे यहाँ से उनके उत्तर दिये जा रहे हैं।

[2] وما يتلى عليكم इसका प्रभाव الله يفتيكم पर है अर्थात अल्लाह तआला उनके विषय में स्पष्टीकरण कर रहा है और अल्लाह की किताब की वह आयात उसको स्पष्ट करती हैं जो इससे पूर्व अनाथ बालिकाओं के विषय में उतर चुकी हैं। तात्पर्य सूर: अन-निसा की आयत संख्या ३ है, जिसमें उन लोगों को इस अन्याय से रोका गया है कि वह अनाथ बालिकाओं से उनकी सुन्दरता के कारण विवाह तो कर लेते थे, परन्तु महर देने में आनाकानी करते थे।

[3]इसके दो अनुवाद किये गये हैं। एक तो यही है जो अनुवादक ने किया है, इसमें في (फ़ी) अरबी का शब्द है, (मूल कथन में) इस शब्द को लोप मान कर अनुवाद किया है। इसका दूसरा अनुवाद عن शब्द को लोप मान कर किया गया है अर्थात "तुम्हें उनसे विवाह करने की कोई इच्छा न हो।" अत: यह दूसरी अवस्था का वर्णन है कि अनाथ

تَقُومُوا لِلْيَتٰمٰى بِالْقِسْطِ ۚ وَمَا تَفْعَلُوا مِنْ خَيْرٍ فَإِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِهٖ عَلِيمًا ﴿١٢٧﴾

तथा निर्बल बालकों के बिषय में[1] और यह कि तुम. अनाथों के विषय में न्याय करो ।[2] तथा तुम जो भी सत्य कार्य करोगे अल्लाह उसे भली-भाँति जानने वाला है ।

وَإِنِ امْرَأَةٌ خَافَتْ مِنْ بَعْلِهَا نُشُوزًا أَوْ إِعْرَاضًا فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِمَا أَنْ يُصْلِحَا بَيْنَهُمَا صُلْحًا ۚ وَالصُّلْحُ خَيْرٌ ۗ وَأُحْضِرَتِ الْأَنْفُسُ

(१२८) और यदि किसी पत्नी को अपने पति के वियोग अथवा विमुखता का भय हो तो दोनों पर परस्पर संधि कर लेने में कोई दोष नहीं ।[3] तथा संधि उत्तम है, और लालसा हर

बालिका कई बार कुरूप होती है तो उसके संरक्षक अथवा उसके साथ के उत्तराधिकारी में सम्मिलित अन्य सगे सम्बन्धी स्वयं भी उसके साथ विवाह करना पसन्द नहीं करते और किसी अन्य स्थान पर भी उसका विवाह न करते ··· ताकि कोई अन्य उसकी जायदाद में भागीदार न बने अल्लाह तआला ने पहली अवस्था की भाँति अत्याचार की इस दूसरी विधि को भी मना किया है

[1]इसका संकेत अनाथ स्त्रियों की ओर है । अर्थात (وَمَا يُتْلَىٰ عَلَيْكُمْ فِي يَتَامَى النِّسَاءِ وَفِي الْمُسْتَضْعَفِينَ مِنَ الْوِلْدَانِ) अनाथ बालिकाओं के विषय में तुम पर जो पढ़ा जाता है । (सूरः *अन-निसा* आयत संख्या ३) (और निर्बल बालकों के विषय में जो पढ़ा जाता है) इससे तात्पर्य क़ुरआन का आदेश ﴿يُوصِيكُمُ اللّٰهُ فِي أَوْلَادِكُمْ﴾ है जिसमें पुत्रों के साथ पुत्रियों को भी उत्तराधिकार में भागीदार बनाया गया है । जब कि अज्ञान काल में केवल बड़े पुत्रों को ही उत्तराधिकारी समझा जाता था, छोटे निर्बल बालक तथा स्त्रियाँ उत्तराधिकार से वंचित थीं । इस्लामी धार्मिक नियमों ने सभी को उत्तराधिकारी बनाया ।

[2]इसका संकेत भी अनाथ स्त्रियों की ओर है । अर्थात अल्लाह की किताब (क़ुरआन करीम) का यह आदेश भी तुम पर पढ़ा जाता है कि अनाथों के साथ न्याय करो, अनाथ बालिका चाहे सुन्दर हो तब भी अथवा कुरूप हो तब भी । दोनों अवस्थाओं में न्याय करो । (जैसाकि सविस्तार गुज़र चुका है)

[3]पति यदि किसी कारणवश अपनी पत्नी को पसन्द न करे और उससे दूरी तथा विमुखता और इंकार नित्य का कर्म बना ले अथवा एक से अधिक पत्नियाँ होने की अवस्था में किसी कम सुन्दर पत्नी से दूर रहे तो पत्नी अपना कुछ अधिकार त्याग कर (महर से अथवा भरण पोषण अथवा संभोग क्रम से) पति से सन्धि कर ले, तो इस सन्धि से पति-पत्नी पर कोई पाप न होगा, क्योंकि सन्धि प्रत्येक स्थिति में श्रेष्ठ है । मोमिनों की माँ आदरणीया

مَن में स्थित कर दी गई है, और यदि तुम उपकार करो[1] तथा संयम करो, तो अल्लाह तुम्हारे कृतियों से सूचित है।

الشُّحَّ ۚ وَإِن تُحْسِنُوا وَتَتَّقُوا فَإِنَّ اللَّهَ كَانَ بِمَا تَعْمَلُونَ خَبِيرًا ﴿١٢٨﴾

(१२९) तथा तुम पत्नियों के बीच कदापि न्याय न कर सकोगे यद्यपि इसकी आकांक्षा रखो, अत: तुम (एक की ओर) पूर्णत: न झुक जाओ कि दूसरी को अधर में लटकती हुई छोड़ दो,[2] और यदि तुम सुधार कर लो और (अन्याय

وَلَن تَسْتَطِيعُوا أَن تَعْدِلُوا بَيْنَ النِّسَاءِ وَلَوْ حَرَصْتُمْ ۖ فَلَا تَمِيلُوا كُلَّ الْمَيْلِ فَتَذَرُوهَا كَالْمُعَلَّقَةِ ۚ وَإِن تُصْلِحُوا وَتَتَّقُوا فَإِنَّ اللَّهَ

सौद: (رضي الله عنها) ने भी अपनी वृद्धावस्था में अपना क्रम आदरणीया आयशा को दे दिया था, जिसे नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने स्वीकार किया था। (सहीह बुख़ारी व मुस्लिम किताबुन निकाह)

[1] شُحّ कंजूसी तथा लालच को कहते हैं। यहाँ तात्पर्य अपना-अपना स्वार्थ है, जो प्रत्येक व्यक्ति को प्रिय है अर्थात प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वार्थ में कंजूसी तथा लालच से काम लेता है।

[2] यह एक दूसरी परिस्थिति है कि यदि एक व्यक्ति की एक से अधिक पत्नियाँ हों, तो वह हार्दिक सम्बन्ध तथा प्रेम सभी के साथ एक प्रकार से नहीं रख सकता क्योंकि प्रेम हृदय से उत्पन्न होता है जिस पर कोई भी प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता। स्वयं नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को अपनी सभी पत्नियों में सबसे अधिक प्रेम आदरणीया आयशा (رضي الله عنها) से था। इच्छा के उपरान्त न्याय न करने का तात्पर्य यही हार्दिक भावना तथा प्रेम में सामंजस्य न होना है। यदि यह हार्दिक प्रेम सामान्य (वाहृय) अधिकार की समता में रुकावट न बने, तो अल्लाह के यहाँ पकड़ नहीं होगी। जिस प्रकार नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने अत्यधिक सुन्दर नमूना प्रस्तुत किया है। परन्तु अधिकतर लोग इस हार्दिक प्रेम के कारण दूसरी पत्नियों के अधिकार को अदा नहीं करते और उन्हें अधर में लटका देते हैं, न उन्हें तलाक़ देते हैं और न पत्नी के अधिकार देते हैं। यह अत्यधिक अत्याचार है, जिससे यहाँ रोका गया है। और नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने भी फ़रमाया है, जिस व्यक्ति की दो पत्नियाँ हों और वह एक की ओर आकर्षित हो (अर्थात दूसरी को अनदेखी करे) तो क़ियामत के दिन इस प्रकार आयेगा कि इसके शरीर का एक भाग (अर्थात आधा) नहीं होगा। (तिर्मिज़ी किताबुन निकाह)

كَانَ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ﴿١٢٩﴾

से) बचो तो निःसंदेह अल्लाह क्षमाशील कृपालु है।

وَإِنْ يَّتَفَرَّقَا يُغْنِ اللّٰهُ كُلًّا مِّنْ سَعَتِهٖ ؕ وَكَانَ اللّٰهُ وَاسِعًا حَكِيْمًا ﴿١٣٠﴾

(१३०) और यदि दोनों जुदा हो जायें तो अल्लाह अपनी कृपा से दोनों को अनीह (परिपूर्ण) कर देगा,[1] और अल्लाह उदार सर्वज्ञानी है।

وَلِلّٰهِ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ ؕ وَلَقَدْ وَصَّيْنَا الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ مِنْ قَبْلِكُمْ وَاِيَّاكُمْ اَنِ اتَّقُوا اللّٰهَ ؕ وَاِنْ تَكْفُرُوْا فَاِنَّ لِلّٰهِ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ ؕ وَكَانَ اللّٰهُ غَنِيًّا حَمِيْدًا ﴿١٣١﴾

(१३१) और आकाशों एवं पृथ्वी का सब कुछ अल्लाह ही का है तथा हमने तुम से पूर्व के लोग जो किताब (धर्मशास्त्र) दिये गये थे, उनको और तुम को यही आदेश दिया है कि अल्लाह से डरो और यदि तुम न मानो तो वस्तुतः जो आकाशों में तथा पृथ्वी में है सब अल्लाह ही का है तथा अल्लाह निस्पृह प्रशंसित है।

وَلِلّٰهِ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ ؕ وَكَفٰى بِاللّٰهِ وَكِيْلًا ﴿١٣٢﴾

(१३२) और जो भी आकाशों में एवं पृथ्वी में है सभी अल्लाह का है तथा अल्लाह काम बनाने वाला बस है।

---

[1]यह तीसरी अवस्था है कि प्रयत्न के उपरान्त यदि निर्वाह की कोई स्थिति न बन पाये, तो फिर तलाक़ के द्वारा विच्छेद का अधिकार है। सम्भव है कि तलाक़ के पश्चात पुरुष को इच्छित गुणों वाली पत्नी तथा स्त्री को उसकी आवश्यकतानुसार गुणों वाला पुरुष मिल जाये। इस्लाम में तलाक़ को अत्यधिक अप्रिय किया गया है। एक हदीस में है।

«أَبْغَضُ الْحَلَالِ إِلَى اللهِ الطَّلَاقُ» (तलाक़ वैध तो है परन्तु यह ऐसा वैध है जो अल्लाह को अति अप्रिय है) (अबू दाऊद, मिशकात)

इसके उपरान्त अल्लाह ने इसकी आज्ञा दी है। इसलिए कि कई बार परिस्थितियाँ ऐसे मोड़ पर ले जाती हैं कि इसके अतिरिक्त कोई चारा नहीं होता और दोनों पक्ष के लिए अच्छाई इसी में होती है कि वह एक-दूसरे से विच्छेद कर लें। फिर भी वर्णित हदीस से यह स्पष्ट होता है कि यह अधिकार उसी समय प्रयोग करना चाहिए जब निर्वाह का कोई उपाय किसी भी प्रकार से न बन सके।

(१३३) हे लोगो ! यदि वह चाहे तो तुम सब को ले जाये और दूसरों को ले आये, और अल्लाह इस पर पूर्ण सामर्थ्य रखने वाला है ।[1]

إِنْ يَشَأْ يُذْهِبْكُمْ أَيُّهَا النَّاسُ وَيَأْتِ بِآخَرِينَ ۚ وَكَانَ اللَّهُ عَلَىٰ ذَٰلِكَ قَدِيرًا

(१३४) जो व्यक्ति सांसारिक प्रतिकार चाहता हो, तो (याद रखो कि) अल्लाह के पास लोक-परलोक (दोनों का) प्रतिकार उपलब्ध है[2] तथा अल्लाह सुनता देखता है ।

مَنْ كَانَ يُرِيدُ ثَوَابَ الدُّنْيَا فَعِنْدَ اللَّهِ ثَوَابُ الدُّنْيَا وَالْآخِرَةِ ۚ وَكَانَ اللَّهُ سَمِيعًا بَصِيرًا

(१३५) हे ईमानवालो ! न्याय पर दृढ़ रहने वाले तथा अल्लाह के लिये सत्य साक्षी देने वाले बन जाओ, यद्यपि वह स्वयं तुम्हारे अपने तथा माता-पिता एवं संबन्धियों के[3] विरुद्ध हो, यदि वह व्यक्ति धनी हो तो अथवा निर्धन हो तो

يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا كُونُوا قَوَّامِينَ بِالْقِسْطِ شُهَدَاءَ لِلَّهِ وَلَوْ عَلَىٰ أَنْفُسِكُمْ أَوِ الْوَالِدَيْنِ وَالْأَقْرَبِينَ ۚ إِنْ يَكُنْ غَنِيًّا أَوْ فَقِيرًا

(उपरोक्त हदीस को अल्लामः अलबानी ने छीन बताया है देखिये, इरवाउल ग़लील न॰ २०४०)

[1]यह अल्लाह तआला का पूर्ण प्रभावी सामर्थ्य का प्रदर्शन है, जबकि एक अन्य स्थान पर फ़रमाया :

﴿ وَإِن تَتَوَلَّوْا يَسْتَبْدِلْ قَوْمًا غَيْرَكُمْ ثُمَّ لَا يَكُونُوا أَمْثَالَكُم ﴾

"यदि तुम मुँह फेरोगे तो वह तुम्हारे स्थान पर अन्यों को ले आयेगा और वह तुम्हारी तरह के नहीं होगें ।" (*सूरः मोहम्मद-३८*)

[2]जैसे कोई व्यक्ति धर्मयुद्ध केवल युद्ध में प्राप्त माल के लिए ही करे तो कितनी नासमझी की बात है, जब कि अल्लाह तआला दुनिया और परलोक दोनों का पुण्य प्रदान करने में सक्षम है तो फिर उससे एक ही चीज़ क्यों माँगी जाये ? मनुष्य दोनों को प्राप्त करने वाला क्यों न बने?

[3]इसमें अल्लाह तआला ने ईमानवालों को न्याय स्थापित करने तथा यथार्थ गवाही देने पर बल दिया है । चाहे उसके कारण उनको स्वयं अथवा माता-पिता तथा सम्बन्धियों को हानि ही क्यों न उठानी पड़े, इसलिए कि सत्य सर्वोच्च है तथा प्रभावशाली है ।

فَاللّٰهُ اَوْلٰى بِهِمَا فَلَا تَتَّبِعُوا الْهَوٰٓى اَنْ تَعْدِلُوْا ۚ وَاِنْ تَلْوٗٓا اَوْ تُعْرِضُوْا فَاِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ خَبِيْرًا ﴿١٣٥﴾

उन दोनों से अल्लाह का सम्बन्ध अधिक है [1] अत: न्याय करने में मनमानी न करो[2] और यदि त्रुटिपूर्ण बयान दोगे अथवा न मानोगे [3] तो अल्लाह तुम्हारी कृतियों से सूचित है।

---

[1]अर्थात किसी धनवान के धन के कारण छूट दी जाये, और न किसी निर्धन की निर्धनता का भय तुम्हें सच बात कहने से रोके, बल्कि अल्लाह इन दोनों से तुम्हारे अधिक निकट तथा श्रेष्ठ है।

[2]अर्थात मनोकांक्षा धर्मांधता अथवा शत्रुता तुम्हें न्याय करने से न रोक दे। जैसे अन्य स्थान पर फ़रमाया

﴿ وَلَا يَجْرِمَنَّكُمْ شَنَاٰنُ قَوْمٍ عَلٰٓى اَلَّا تَعْدِلُوْا ﴾

"तुम्हें किसी क़ौम की शत्रुता इस बात पर तैयार न कर दे कि तुम न्याय न करो।" (सूर: अल-मायद:-८)

[3] تلووا शब्द لَيٌّ से है, जो बदलने तथा जान-बूझ कर झूठ बोलने को कहा जाता है। अर्थ गवाही में परिवर्तन है। और إعراض (इंकार) से तात्पर्य गवाही छुपाना और न देना है। इन दोनों बातों से भी रोका गया है। इस आयत में न्याय पर बल और उसके लिए जिन बातों की आवश्यकता है, उनका प्रबन्ध करने का आदेश दिया गया है। जैसे (१) प्रत्येक अवस्था में न्याय करो, इससे किसी प्रकार से बचने की चेष्टा न करो, किसी अपमान अथवा हानि के कारण इसमें रूकावट न आये, बल्कि इसको स्थापित करने के लिए एक-दूसरे के सहायक तथा दाहिना हाथ बनो। (२) केवल अल्लाह की प्रसन्नता ही तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिए क्योंकि इस अवस्था में तुम परिवर्तन, कमी अथवा दबाव से बचोगे और तुम्हारा निर्णय न्याय के तराजू पर पूरा उतरेगा। (३) न्याय का प्रभाव यदि तुम्हारे माता-पिता अथवा अन्य किस सम्बन्धी पर भी पड़े, तब भी तुम चिन्ता न करो। और अपनी तथा उनकी छूट के सापेक्ष न्याय को प्रमुखता दो। (४) किसी धनवान के धन के कारण पक्षपात न करो और किसी निर्धन की निर्धनता से तरस न खाओ। क्योंकि वही जानता है कि इन दोनों की भलाई किस में है? (५) न्याय में मनोकांक्षा, क़ौमी पक्ष तथा शत्रुता आड़े नहीं आनी चाहिए, बल्कि इन सब को किनारे रखकर निष्पक्ष रूप से न्याय करो।

न्याय का यह प्रबन्ध जिस समाज में होगा, वहाँ शान्ति होगी और अल्लाह की ओर से धन-धान्य और कृपा प्रदान होगी। सहाबा कराम (رضي الله عنهم) ने इस बिन्दु को भली प्रकार समझ लिया था। अत:आदरणीय अब्दुल्लाह बिन रवाह: (رضي الله عنه)के विषय में

(१३६) हे ईमानवालो ! अल्लाह तथा उस के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) तथा उस किताब (पवित्र क़ुरआन) के प्रति जिसे अपने दूत (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) पर उतारी है तथा उन धर्म शास्त्रों के प्रति विश्वास करो जो इससे पूर्व उतारे गये,[1] और जो अल्लाह और उसके फ़रिश्तों तथा उसके धर्म-शास्त्रों एवं उसके रसूलों तथा प्रलय दिवस को नहीं माने वह बहुत दूर बहक गया ।

يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا آمِنُوا بِاللَّهِ وَرَسُولِهِ وَالْكِتَابِ الَّذِي نَزَّلَ عَلَىٰ رَسُولِهِ وَالْكِتَابِ الَّذِي أَنزَلَ مِن قَبْلُ ۚ وَمَن يَكْفُرْ بِاللَّهِ وَمَلَائِكَتِهِ وَكُتُبِهِ وَرُسُلِهِ وَالْيَوْمِ الْآخِرِ فَقَدْ ضَلَّ ضَلَالًا بَعِيدًا ﴿١٣٦﴾

(१३७) नि:संदेह जो विश्वास किये फिर नकार दिये, फिर विश्वास किये फिर इंकार किये तथा इंकार में बढ़ गये, अल्लाह वास्तव में उन्हें क्षमा नहीं करेगा और न सीधा रस्ता दिखायेगा ।[2]

إِنَّ الَّذِينَ آمَنُوا ثُمَّ كَفَرُوا ثُمَّ آمَنُوا ثُمَّ كَفَرُوا ثُمَّ ازْدَادُوا كُفْرًا لَّمْ يَكُنِ اللَّهُ لِيَغْفِرَ لَهُمْ وَلَا لِيَهْدِيَهُمْ سَبِيلًا ﴿١٣٧﴾

आता है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने उन्हें ख़ैबर के यहूदियों के पास भेजा कि वह वहाँ जाकर फलों तथा फसलों का अनुमान लगा कर आयें । यहूदियों ने उन्हें रिश्वत प्रस्तुत करनी चाही ताकि वह कुछ कोमलता से काम लें । उन्होंने फ़रमाया, अल्लाह की सौगन्ध, मैं उसकी ओर से दूत बन कर आया हूँ, जो दुनिया में मुझे सबसे अधिक प्रिय है, और तुम मेरे निकट सबसे अधिक अप्रिय हो, परन्तु मेरे प्रिय का प्रेम तथा तुम्हारी शत्रुता मुझे इस बात पर नहीं उकसा सकती कि मैं तुम्हारे मामले में न्याय न करूँ । यह सुन कर उन्होंने कहा इसी न्याय के कारण आकाश और धरती का प्रबन्ध स्थापित है (तफ़सीर इब्ने कसीर)

[1]ईमानवालों के लिये ईमान लाने पर बल, प्राप्त किये हुए को प्राप्त करने की बात नहीं है, बल्कि ईमान की पूर्ति तथा उस पर स्थिर रहने का आदेश है । जैसे اهْدِنَا الصِّرَاطَ الْمُسْتَقِيمَ का अर्थ है ।

[2]कुछ व्याख्याकारों ने इसका तात्पर्य यहूदियों से लिया है । यहूदी आदरणीय मूसा पर ईमान लाये और आदरणीय उज़ैर का इंकार किया, फिर आदरणीय उज़ैर पर ईमान लाये, तो आदरणीय ईसा का इंकार किया । फिर इंकार में बढ़ते चले गये । यहाँ तक कि परम

(१३८) अवसरवादियों को सूचित कर दो कि उन के लिये दु:खद यातना आवश्यक है।

بَشِّرِ الْمُنٰفِقِيْنَ بِاَنَّ لَهُمْ عَذَابًا اَلِيْمًا ۙ﴿١٣٨﴾

(१३९) जो मुसलमानों को छोड़ कर काफ़िरों को मित्र बनाते हैं,[1] क्या वह उन के पास मान-मर्यादा की खोज करते हैं ? (तो स्मरणीय रहे कि) सभी मान-सम्मान अल्लाह के अधिकार में है।[2]

الَّذِيْنَ يَتَّخِذُوْنَ الْكٰفِرِيْنَ اَوْلِيَآءَ مِنْ دُوْنِ الْمُؤْمِنِيْنَ ؕ اَيَبْتَغُوْنَ عِنْدَهُمُ الْعِزَّةَ فَاِنَّ الْعِزَّةَ لِلّٰهِ جَمِيْعًا ؕ﴿١٣٩﴾

आदरणीय . मोहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की नबूवत का भी इंकार किया। और कुछ ने इसका तात्पर्य अवसरवादियों से लिया है, क्योंकि उनका उद्देश्य मुसलमानों को हानि पहुंचाना था, इसलिए बार-बार अपने को मुसलमान होने का ढोंग रचाते थे। अन्तत: इंकार तथा बुराई में इतने पड़ गये कि उनके मार्गदर्शन की आशा ही समाप्त हो गई।

[1]जिस प्रकार सूर: अल-बक़र: के प्रारम्भ में गुज़र चुका है कि अवसरवादी काफ़िरों के पास जाकर यही कहते कि हम तो वास्तव में तुम्हारे ही साथ हैं, और मुसलमानों से तो हम यूँ ही उपहास करते हैं।

[2]अर्थात सम्मान काफ़िरों के साथ मित्रता तथा प्रेम से नहीं मिलेगा, क्योंकि यह तो अल्लाह तआला के अधिकार में है। और वह सम्मान अपने भक्तों को ही प्रदान करता है। अन्य स्थान पर फ़रमाया :

﴿مَن كَانَ يُرِيدُ الْعِزَّةَ فَلِلَّهِ الْعِزَّةُ جَمِيعًا﴾

"जो सम्मान की कामना करता है,(तो उसे समझ लेना चहिए) कि सम्मान सब का सब अल्लाह ही के लिए है।"(सूर: *अल-फ़ातिर*-१०)

और फ़रमाया:

﴿وَلِلَّهِ الْعِزَّةُ وَلِرَسُولِهِ وَلِلْمُؤْمِنِينَ وَلَٰكِنَّ الْمُنَافِقِينَ لَا يَعْلَمُونَ﴾

"सम्मान अल्लाह के लिए है, उसके रसूल के लिए है और ईमानवालों के लिए है, परन्तु अवसरवादी नहीं जानते।" (सूर: *अल-मुनाफ़िकून* -८)

وَقَدْ نَزَّلَ عَلَيْكُمْ فِي الْكِتٰبِ اَنْ اِذَا سَمِعْتُمْ اٰيٰتِ اللّٰهِ يُكْفَرُ بِهَا وَيُسْتَهْزَاُ بِهَا فَلَا تَقْعُدُوْا مَعَهُمْ حَتّٰى يَخُوْضُوْا فِيْ حَدِيْثٍ غَيْرِهٖٓ ۖ اِنَّكُمْ اِذًا مِّثْلُهُمْ ۗ اِنَّ اللّٰهَ جَامِعُ الْمُنٰفِقِيْنَ وَالْكٰفِرِيْنَ فِيْ جَهَنَّمَ جَمِيْعًا ۝١٤٠

(१४०) और अल्लाह (तआला) ने तुम पर अपनी किताब (पवित्र क़ुरआन) में यह आदेश उतारा है कि जब तुम अल्लाह की आयतों के साथ इंकार एवं उपहास होते सुनो तो उनके साथ उस सभा में न बैठो, जब तक कि दूसरी बात में न लग जायें, क्योंकि इस समय तुम उन्हीं के समान होगे,[1] निश्चय अल्लाह द्वयवादियों एवं काफ़िरों (विश्वासहीनों) को नरक में एकत्र करने वाला है।

الَّذِيْنَ يَتَرَبَّصُوْنَ بِكُمْ ۚ فَاِنْ كَانَ لَكُمْ فَتْحٌ مِّنَ اللّٰهِ قَالُوْٓا اَلَمْ نَكُنْ مَّعَكُمْ ۖ وَاِنْ كَانَ لِلْكٰفِرِيْنَ نَصِيْبٌ ۙ قَالُوْٓا اَلَمْ نَسْتَحْوِذْ عَلَيْكُمْ وَنَمْنَعْكُمْ مِّنَ الْمُؤْمِنِيْنَ ۗ فَاللّٰهُ يَحْكُمُ بَيْنَكُمْ

(१४१) जो तुम्हारे विषय में प्रतिक्षा करते हैं, पुनः यदि तुम्हारी विजय अल्लाह की ओर हो तो ये कहते हैं कि क्या हम तुम्हारे साथ नहीं थे तथा यदि काफ़िरों (विश्वासहीनों) को तनिक-सी सफलता मिले तो कहते हैं कि क्या हमने तुम्हें घेर नहीं लिया और मुसलमानों

अर्थात वह द्वयवाद के द्वारा तथा काफ़िरों से मित्रता के द्वारा सम्मान प्राप्त करना चाहते हैं। वास्तव में यह चरित्र अपमान तथा अनादर का है, सम्मान का नहीं।

[1]अर्थात मना करने के उपरान्त यदि तुम ऐसी सभाओं में जहाँ अल्लाह की आयतों का उपहास उड़ाया जा रहा हो बैठोगे और उसे रोकोगे नहीं, तो फिर तुम भी उनके समान पाप के भागीदार बनोगे। जैसाकि एक हदीस में आता है, "जो व्यक्ति अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखता है, वह उस भोज में सम्मिलित न हो जिसमें मदिरा का दौर चले।" (मुसनद अहमद, भाग १, पृष्ठ २०, भाग ३ पृष्ठ ३३९) इससे विदित हुआ कि ऐसी सभाओं तथा समारोह में सम्मिलित होना, जिसमें अल्लाह तथा रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के आदेशों का मौखिक अथवा कर्मों द्वारा उपहास उड़ाया जा रहा हो, जैसे आज कल के सुसभ्य तथा पाश्चात्य देशों से प्रभावित धनवान की सभा में साधारणतः ऐसा होता है अथवा विवाह एवं जन्म दिवस आदि समारोह में किया जाता है। अतः इस प्रकार की सभी वर्णित सभाओं में सम्मिलित होना महापाप है। ﴿اِنَّكُمْ اِذًا مِّثْلُهُمْ﴾ की चेतावनी ईमानवाले के अन्दर कंपन उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त है, यदि दिल के अन्दर ईमान हो।

يَوۡمَ ٱلۡقِيَٰمَةِۗ وَلَن يَجۡعَلَ ٱللَّهُ لِلۡكَٰفِرِينَ عَلَى ٱلۡمُؤۡمِنِينَ سَبِيلًا ١٤١

से नहीं बचाया था ? तो प्रलय के दिन [1] अल्लाह ही तुम्हारे बीच निर्णय करेगा [2] तथा अल्लाह कदापि काफ़िरो को मुसलमानों पर कोई मार्ग (प्रभाव) नहीं देगा ।[3]

إِنَّ ٱلۡمُنَٰفِقِينَ يُخَٰدِعُونَ ٱللَّهَ وَهُوَ خَٰدِعُهُمۡ وَإِذَا قَامُوٓاْ إِلَى ٱلصَّلَوٰةِ

(१४२) नि:संदेह अवसरवादी अल्लाह (तआला) से छल कर रहे हैं, और वह उन्हें उस छल

---

[1]अर्थात हम तुम पर प्रभावशाली होने लगे थे, परन्तु तुम्हें अपना साथी समझकर छोड़ दिया और मुसलमानों का साथ छोड़ कर हमने तुम्हें मुसलमानों के चंगुल से बचाया । अर्थात यह कि तुम्हें प्रभाव हमारी दोहरी नीति के कारण प्राप्त हुआ । जो हमने मुसलमानों में प्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित होकर अपना रखी, परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें हानि पहुँचाने में हमने कोई आलस्य तथा कमी नहीं की यहाँ तक कि तुम उन पर प्रभावशाली हो गये ।

[2]अर्थात दुनिया में तो तुमने छल-कपट से सामयिक रूप से कुछ सफलता प्राप्त कर ली, परन्तु क़ियामत के दिन अल्लाह तआला का निर्णय उन आन्तरिक विचारों तथा स्थिति के प्रकाश में होगा जिन्हें तुम दिल में छिपाये थे, इसलिए अल्लाह तआला तो दिल के भेदों को भली-भाँति जानता है । फिर उस पर जो दंड वह देगा, तो ज्ञात होगा कि दुनिया में अवसरवादी नीति अपनाने के कारण अत्यधिक हानि का व्यापार किया था, जिस पर नरक की स्थाई यातना भुगतनी पड़ेगी । أعاذنا الله منه

[3]अर्थात प्रभुत्व न देगा । इसके विभिन्न भावार्थ वर्णित किये गये हैं । (१) मुसलमानों का प्रभाव प्रलय के दिन होगा (२) तर्क-वितर्क के आधार पर काफ़िर मुसलमानों पर प्रभावशाली नहीं हो सकते । (३) काफ़िरों का प्रभाव इस प्रकार का नहीं होगा कि मुसलमानों के धन-धान्य का बिल्कुल अन्त हो जाये तथा वह दुनिया के नक्शे से ही लुप्त हो जायें । एक हदीस से भी इस भावार्थ की पुष्टि होती है । (४) जब तक मुसलमान अल्लाह की अप्रसन्नता तथा उसके निषेध किये हुये कर्मों से रोकते रहेंगे काफ़िर उन पर प्रभावशाली न हो सकेंगे । इमाम इब्नुल अरबी फ़रमाते हैं कि "यह सर्वश्रेष्ठ अर्थ है ।" क्योंकि अल्लाह तआला का कथन है ।

﴿ وَمَآ أَصَٰبَكُم مِّن مُّصِيبَةٖ فَبِمَا كَسَبَتۡ أَيۡدِيكُمۡ ﴾

"और जो कठिनाई तुम पर आती है, वह तुम्हारे कर्मों के कारण से ।" (सूर: अल-शूरा-३०) (फ़तहुल क़दीर)

قَامُوا كُسَالَىٰ يُرَاءُونَ النَّاسَ وَلَا يَذْكُرُونَ اللَّهَ إِلَّا قَلِيلًا

का बदला देने वाला है ।[1] और जब नमाज़ को खड़े होते हैं, तो बडे आलस्य की स्थिति में खड़े होते हैं [2] केवल लोगों को दिखाते हैं ।[3] और अल्लाह की याद बस नाम मात्र करते हैं ।[4]

مُذَبْذَبِينَ بَيْنَ ذَٰلِكَ لَا إِلَىٰ هَٰؤُلَاءِ وَلَا إِلَىٰ هَٰؤُلَاءِ

(१४३) वह मध्य में ही असमंजस्य में हैं, न पूर्णरूप से उनकी ओर न उचित रूप से इन

---

[1]इसका संक्षिप्त विवरण सूर: अल-बक़र: के आरम्भ में हो चुका है ।

[2]नमाज़ इस्लाम का विशेष स्तम्भ है और सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य है तथा इसमें भी वह आलस्य तथा सुस्ती का प्रदर्शन करते थे, क्योंकि उनका हृदय ईमान एवं अल्लाह के भय तथा शुद्धता से वंचित था । यही कारण था कि ईशा (रात्रि) तथा फ़ज्र (प्रात:काल) की नमाज़ें विशेष रूप से उन पर भारी थीं । जैसाकि नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का फ़रमान है ।

«أَثْقَلُ الصَّلٰوةِ عَلَى الْمُنَافِقِينَ صَلٰوةُ الْعِشَاءِ وَصَلٰوةُ الْفَجْرِ...».

"द्वयवादियों के ऊपर ईशा तथा फज्र की नमाज़ सबसे भारी है ।" (सहीह बुख़ारी मवाक़ीतुसस्लात, सहीह मुस्लिम किताबुल मसाजिद)

[3]यह नमाज़ भी वह मक्कारी तथा दिखावे के लिए पढ़ते थे ताकि मुसलमानों को धोखा दे सकें ।

[4]अल्लाह की याद नाम मात्र करते हैं अथवा नमाज़ संक्षिप्त पढ़ते हैं لا يصلون إلا صلاة قليلة जब नमाज़ शुद्धता एवं अल्लाह के डर, तथा एकाग्रता से शून्य हो तो संतोष से नमाज़ पढ़ने में कठिनाई होती है । जैसाकि وإنها لكبيرة إلا على الخشعين (सूर:अल-बक़र:-४५) से स्पष्ट है । हदीस में नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया, "यह अवसरवादी की नमाज़ है, यह अवसरवादी की नमाज़ है, यह अवसरवादी की नमाज़ है कि बैठा हुआ सूर्य की प्रतिक्षा करता रहता है, यहाँ तक कि जब सूर्य शैतान की दो सींघों के बीच (अर्थात सूर्यास्त के निकट) हो जाता है, तो उठता है और चार चोंचें मार लेता है ।" (सहीह मुस्लिम किताबुल मसाजिद, मुअत्ता किताबुल क़ुरआन)

وَمَن يُضْلِلِ اللَّهُ فَلَن تَجِدَ لَهُۥ سَبِيلًا ⑭

की ओर[1] और जिसे अल्लाहे (तआला) भटका दे, तो तू उसके लिए कोई मार्ग नहीं पायेगा ।

يَٰٓأَيُّهَا ٱلَّذِينَ ءَامَنُوا۟ لَا تَتَّخِذُوا۟ ٱلْكَٰفِرِينَ أَوْلِيَآءَ مِن دُونِ ٱلْمُؤْمِنِينَ ۚ أَتُرِيدُونَ أَن تَجْعَلُوا۟ لِلَّهِ عَلَيْكُمْ سُلْطَٰنًا مُّبِينًا ⑭

(१४४) हे ईमानवालो ! ईमानवालों को छोड़कर काफ़िरों को मित्र न बनाओ, क्या तुम यह चाहते हो कि अपने ऊपर अल्लाह (तआला) का खुला तर्क स्थापित कर लो ।[2]

إِنَّ ٱلْمُنَٰفِقِينَ فِى ٱلدَّرْكِ ٱلْأَسْفَلِ مِنَ ٱلنَّارِ وَلَن تَجِدَ لَهُمْ نَصِيرًا ⑮

(१४५) अवसरवादी तो अवश्य नरक की सब से निचली श्रेणी में जायेंगे ।[3] असम्भव है कि तू उनका कोई सहायता करने वाला पा ले ।

إِلَّا ٱلَّذِينَ تَابُوا۟ وَأَصْلَحُوا۟ وَٱعْتَصَمُوا۟ بِٱللَّهِ وَأَخْلَصُوا۟ دِينَهُمْ لِلَّهِ فَأُو۟لَٰٓئِكَ مَعَ ٱلْمُؤْمِنِينَ ۖ وَسَوْفَ

(१४६) हाँ, यदि क्षमा माँग लें और सुधार कर लें और अल्लाह (तआला) पर पूर्ण विश्वास करें और शुद्धरूप से अल्लाह ही के लिए धार्मिक कार्य करें, तो यह लोग ईमानवालों के साथ

---

[1]काफ़िरों के पास जाते हैं तो उनके साथ और जब मुसलमानों के पास आते हैं तो उनके साथ मित्रता तथा सम्बन्ध का प्रदर्शन करते हैं । प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से वह न मुसलमानों के साथ हैं और न काफ़िरों के साथ और कुछ अवसरवादी अविश्वास तथा ईमान के मध्य असमंजस्य में पड़े रहते थे । नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का कथन है, "अवसरवादी की तुलना उस बकरी के समान है जो जोड़ा खाने के लिए दो रेवड़ों के बीच असमंजस्य में पड़ी रहती है (बकरे की खोज में) कभी एक रेवड़ की ओर जाती है, कभी दूसरे की ओर ।" (सहीह मुस्लिम किताबुल मुनाफ़िक़ीन)

[2]अर्थात अल्लाह तआला ने तुम्हें काफ़िरों की मित्रता से मना किया है । अब यदि तुम मित्रता करोगे तो इसका अर्थ यह होगा कि तुम अल्लाह को यह दलील उपलब्ध करा रहे हो कि वह तुम्हें भी दण्ड दे सके । (अर्थात अल्लाह के आदेशों की अवज्ञा तथा विरोध के कारण)

[3]नरक की सबसे निम्न श्रेणी هاوية (हाविय:) कहलाती है । أعاذنا الله منها अवसरवादियों की वर्णित कर्मों तथा अवगुणों से हम सभी मुसलमानों की अल्लाह तआला रक्षा करे ।

है ।[1] अल्लाह (तआला) ईमानवालों को बहुत बड़ा बदला देगा ।

يُؤْتِ اللهُ الْمُؤْمِنِيْنَ اَجْرًا عَظِيْمًا

(१४७) अल्लाह (तआला) तुम्हें दंड देकर क्या करेगा यदि तुम कृतज्ञ रहो तथा ईमान के साथ रहो ?[2] और अल्लाह (तआला) अति सम्मान करने वाला पूर्ण ज्ञाता है ।[3]

مَا يَفْعَلُ اللهُ بِعَذَابِكُمْ اِنْ شَكَرْتُمْ وَاٰمَنْتُمْ ؕ وَكَانَ اللهُ شَاكِرًا عَلِيْمًا

[1]अर्थात अवसरवादियों में से जो इन चार बातों का स्वच्छ मन से प्रयोजन करेगा, वह नरक में जाने के बजाय स्वर्ग में ईमानवालों के साथ होगा ।

[2]कृतज्ञता का अर्थ है कि अल्लाह के आदेशानुसार बुराईयों से बचना तथा सत्कर्म का प्रयोजन करना । यह अल्लाह की कृपा की कर्मों द्वारा कृतज्ञता व्यक्त करना है । और ईमान से तात्पर्य अल्लाह के एक होने तथा उसके प्रभुत्व पर तथा संसार के लिए अन्तिम नबी परम आदरणीय मोहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की रिसालत पर ईमान है ।

[3]अर्थात जो उसका कृतज्ञ होगा वह सम्मान करेगा, जो दिल से ईमान लायेगा, वह इसको जान लेगा और उसके अनुसार सर्वश्रेष्ठ बदला प्रदान करेगा ।